गां धी जी

खंड

बारह

अछूतोद्धार

प्रथम भाग



मूल्य एक रुपया आठ आना मात्र

(प्रथम संस्करण : मार्च १९५०)

मुद्रक तथा प्रकाशक
जयनाथ शर्मा
व्यवस्थापक
काशी विद्यापीठ प्रकाशन विभाग
तथा
विद्यापीठ मुद्रणालय,
बनारस छावनी

सूची

❋

प्रकाशकका वक्तव्य

'गांधीजी' ग्रंथमालाका यह नवां प्रकाशन ग्रंथमालाके अन्तर्गत बारहवें खंडका प्रथम भाग है। इस खंडमें पूज्य बापूकी लेखनीसे हिन्दू समाजमें कोढ़के समान फैली हुई अछूतोंकी समस्यापर लिखे गए लेखोंका संग्रह है। इस लेख-संग्रहके प्रायः दो और भागोंमें समाप्त होनेकी आशा है। इस भागके संकलन तथा संपादनमें श्री विद्यारण्य शर्मा तथा श्रीबागेश्वरी प्रसादजीसे बड़ी सहायता मिली है जिसके लिए हम उनके आभारी है।

'गांधीजी' ग्रंथमालामें अबतक भारतीय नेताओंकी श्रद्धांजलियाँ दो भागोंमें, कवियोंकी श्रद्धांजलियाँ एक भाग, बापूके अहिंसा संबंधी लेखोंका संग्रह चार भागोंमें तथा साम्प्रदायिक समस्या संबंधी लेखोंका एक भाग इस प्रकार आठ अंक प्रकाशित हो चुके हैं। अब यह नवां अंक आपके हाथोंमें है। ग्रंथमालाके खंडोंका विषयानुसार क्रम बंटा हुआ है। इस क्रममें जिस खंडकी सामग्री प्रकाशनके लिए तैयार हो जाती है उसका प्रकाशन हम करते जा रहे हैं। इस कारण खंडोंके विज्ञापित क्रममें व्यतिक्रम पड़ता तो प्रतीत होता है किन्तु खंडोंकी क्रम संख्या वही रहती है जो पूर्व निश्चित है। क्रमशः सब खंड प्रकाशित होंगे।

ग्रंथमालाके इन खंडोंके प्रकाशनमें हमें काशीके सुप्रसिद्ध कांग्रेस कार्यकर्ता तथा गांधी-भक्त श्री रामसूरतजी मिश्र, श्री कृष्णदेव उपाध्याय, स्व० श्री बैजनाथजी केडिया, स्व० श्री कन्हैयालालजी शास्त्री तथा कारमाइकल पुस्तकालयके 'यंग इंडिया' हिन्दी-नवजीवन, तथा हरिजन-सेवकके संग्रहोंसे बड़ी सहायता मिली है जिसके लिए हम बहुत आभारी हैं।

इस भागके प्रकाशनकी अनुमति प्रदान करनेकी जो कृपा श्री जीवनजी डाह्या भाई देसाईने की है तदर्थ हम उनके भी कृतज्ञ हैं।

ग्रंथमालाके अबतकके प्रकाशित अंकोंका प्रथम संस्करण बिलकुल ही समाप्त हो गया था अतः हम उनके पुनः प्रकाशनका प्रबन्ध कर रहे हैं। प्रथम खंडके भारतीय नेताओंकी श्रद्धांजलियोंका प्रथम भाग पुनः मुद्रित हो चुका है। अन्य अंकोंके पुनः मुद्रणका प्रबन्ध हो रहा है। इस आशातीत प्रचारसे हमें जो बल, उत्साह तथा साहस प्राप्त हो रहा है उससे हमें विश्वास है कि गांधीजीके विचारोंके प्रसार तथा प्रचारके शुभ यज्ञमें हमें सफलता अवश्य मिलेगी।

❀

आमुख

ग्रंथमालाके इस अंकमें हम पाठकोंको गांधीजीके उन लेखोंका संग्रह देना प्रारम्भ कर रहे हैं, जो उन्होंने हिन्दू समाजसे अछूतपनके रोगको दूर करनेके लिए लिखा था। अस्पृश्यता रूपी महाराक्षसने हिन्दू-धर्म तथा समाजको नष्ट-भ्रष्ट करनेमें अपना जबरदस्त हाथ रखा था। समय-समयपर भगवान बुद्ध, राजा राम-मोहन राय, स्वामी दयानन्द जैसे अनेक महान समाज-सुधारकोंने इस ओर ध्यान दिया; लेकिन इस प्रयासमें पूज्य गांधीजीको जितनी सफलता मिली, उतनी इसके पूर्व अन्य किसीको प्राप्त न हो सकी। महात्माजीने जनता-जनार्दनके मर्मस्थलको छूकर उसे जागृत किया तथा इस भीषण रोगके निवारणकी चेष्टा की।

समाज सुधारकोंने गांधीजीके इस प्रयासमें सहयोग देनेका प्रयत्न अवश्य किया, लेकिन एक ओर रूढ़िवादियोंका विरोध तथा दूसरी ओर तत्कालीन शासकोंकी भेदमूलक नीति, दोनोंने मिलकर हिन्दू समाजसे इस रोगके दूर होनेमें बराबर अड़ंगा लगाया। इनका सामना बापूने अपनी पूरी शक्ति लगाकर किया, यहां तक उन्हें एक बार अपने प्राणोंकी भी बाजी लगा देना पड़ी थी।

राष्ट्रका सर्वांगीण विकास तथा उससे बढ़कर जगतके सुख, शांति तथा समृद्धिके लिए अहिंसाके जिस महान अस्त्रका उपयोग बापूने किया, यह प्रयत्न भी उसीका एक अंग था। अहिंसाका मूल प्रेम है। व्यक्ति व्यक्तिका प्रेम, समाज समाजका प्रेम, एक राष्ट्रका दूसरे राष्ट्रसे प्रेम तथा इस प्रकार सम्पूर्ण जगतमें प्रेमपूर्ण व्यवस्था स्थापित करना ही उनका सुख-स्वप्न था। आज संसार जिस हिंसात्मक वृत्तिमें उलझा हुआ है, उससे उसे मुक्त होनेका यही मार्ग गांधीजीने दिखलाया। आज नहीं तो कल संसारको इनके बताये मार्गपर चलनेसे ही सच्ची शांति होगी; तभी वह अपने अस्तित्वको कायम रख सकेगा। इसका भान भी लोगोंको अब होने लग गया है। यह एकमात्र महात्माजीके प्रयत्नोंका ही फल है।

मानव समाजके सांस्कृतिक विकासमें भारतका अपना एक विशिष्ट स्थान है। लेकिन अपने ही एक अंगसे घृणा कायम रखते हुए वह अपना उचित स्थान कभी भी ग्रहण नहीं कर सकता। इसे महात्माजीने हृदयसे महसूस किया था। अतः उन्होंने हमें राजनीतिक स्वतंत्रताके साथ-साथ सामाजिक स्वतंत्रताके मार्गपर अग्रसर करनेका बीड़ा उठाया। इस मार्गमें पहला रोड़ा हिन्दुओंमें एक वर्गका सामाजिक दासतामें बंधा रहना था। यह दासता केवल सामाजिक ही न थी, बल्कि धर्मका अंग मान लेनेसे वह राजनीतिक, आर्थिक तथा बौद्धिक दासता भी हो गया था। इस दासत्वमें अपने ही एक अंगको जकड़कर हिन्दू समाजने अपनेको पंगु कर लिया था। यह दासत्व

राष्ट्रकी प्रगतिमें बाधक सिद्ध हो रहा था। इसे गांधीजीने अच्छी तरह समझा। और समझकर उन्होंने उसे दूर करनेका मार्ग भी दिखलाया। अपनेको 'हरिजन' बनाकर और मानकर तथाकथित अन्त्यजोंमें अपनेको शामिल कर लिया और हमें बताया कि समाजमें कोई नीच या ऊंच नहीं है। भगवानकी सृष्टिमें सब एक समान हैं। अगर हिन्दू समाज इस तत्वको न समझे तथा वर्तमान रूढ़िवादी भावनाका त्याग न करे तो केवल उसका ही सर्वनाश नहीं है बरन् वह अपने साथ राष्ट्रको भी रसातल ले जायगा और संसारके अभ्युत्थानमें बाधक होगा। हिन्दू समाजने मानव जातिके जिस अंगको अपमानितकर अज्ञान और दासत्वके भयंकर गड्ढेमें ढकेल दिया है वही समाजके मंगलको रोक रहा है। वह हमारे मस्तकपर कलंककी छाप है। बापूने हमें चेतावनी दी कि अगर उस परित्यक्त मानवसमाजका हम हम आलिंगन नहीं करते, उसे समाजमें अपने बराबर स्थान नहीं देते तो हम अपनेको मनुष्य कहनेके अधिकारी ही नहीं रहेंगे। बापूकी यह बात केवल बात ही नहीं थी बल्कि उन्होंने अपने आचरणसे हमें मार्ग भी प्रदर्शित किया कि इस अन्यायका किस प्रकार प्रतिकार किया जा सकता है। आशा ही नहीं बल्कि विश्वास है कि गांधीजीके इन लेखोंसे जो कार्य हम उनके जीवनकालमें पूर्ण करनेमें सफल न हो सके थे वह भारतके स्वतंत्र जनतंत्रात्मक राष्ट्र हो जानेके बाद तो हम पूर्ण कर सकेंगे। इसीमें हमारा, हमारे समाजका, राष्ट्रका तथा संसारका कल्याण सन्निहित है।

—संपादक-मंडल



पतित जातियाँ

स्वामी विवेकानन्द मद्रासकी पंचम जातियोंको 'दबाई हुई जाति' कहा करते थे। उनका यह विशेषण अतीव उपयुक्त था। हम लोगोंने उन्हें इस तरह दबाया है कि हम स्वयं पतित बन गये हैं। स्वर्गीय गोखलेने कहा था कि हम लोगोंने जो पाप किया है उसके लिए ईश्वरने हमें यही दण्ड दिया है कि हम लोग इस समय साम्राज्यके 'परिया' समझे जाते हैं। और यह दण्ड सर्वथा उपयुक्त भी है। एक संवाददाताने जले-कटे हृदयसे पत्र लिखकर मुझसे पूछा है कि आप इस संबंधमें क्या कर रहे हैं। अपने लेखका जो शीर्षक उसने दिया है उसी शीर्षकका प्रयोग करके मैंने उस पत्रको प्रकाशित किया है। क्या हम हिन्दुओंको यह उचित नहीं है कि अंग्रेजोंसे पहले हमें अपने हाथके खूनके दागको मिटा देना चाहिये। यह प्रश्न बहुत ही उचित और समयोपयोगी है। यदि दासताके पाशमें बंधे किसी राष्ट्रका आदमी हमें हमारी अवस्थासे मुक्त किये बिना ही इन पतित जातियोंका उद्धार करना चाहता है तो इसे हम सहर्ष स्वीकार करते हैं। पर यह बात एकदम असंभव है। एक दास सही काम करनेके लिये भी स्वतंत्र नहीं है। विदेशी मालकी आमदको रोकना हमारे लिये उचित और ठीक है पर इसका हमें कोई अधिकार नहीं है। यदि राष्ट्रके हाथमें आज कानून बनानेका अधिकार होता तो मैं इन पतित जातियोंके लिये अच्छासे अच्छा कुँआ बनवा देता और उनके लड़कोंके लिये अलग शिक्षालय बनवा देता जिससे उनमें अनिवार्य शिक्षाका प्रचार हो जाता। पर जबतक वह शुभ दिन उपस्थित नहीं होता तबतक तो चुपचाप बैठे रहना ही उचित होगा।

पर तबतक क्या इन्हें इसी तरह छोड़ देना चाहिये ? इस तरहकी कोई कार्यवाही अनुचित और अन्यायपूर्ण होगी। मेरी समझमें जो उचित प्रतीत होता है और जो मेरी शक्तिमें है उसे मैं इन पंचम भाइयोंके लिये उठा नहीं रखूँगा।

राष्ट्रकी इन पतित जातियोंके लिये तीन द्वार खुले हैं। अधीर होकर इस सरकारकी वे सहायता ले सकते हैं, जो लोगोंको दास बनाकर रखना चाहती है। उन्हें सहायता मिल सकती है। पर इससे तो गड्ढेसे निकलकर अगाध सागरमें जा गिरेंगे। आज वे गुलामोंके भी गुलाम हैं पर सरकारकी सहायता लेने पर वे

अपने ही बन्धु-बान्धवोंको सताये जानेके आधार-यंत्र बन जायँगे । अभी तो उनपर ही अत्याचार किया जा रहा है, इसलिये वे पापसे बचे हैं । पर उस समय वे पापाचारके यंत्र हो जायँगे । मुसलमानोंने पहले इसी मार्गका अनुसरण किया था पर अन्तमें उन्हें भी असफलता ही मिली । उन्होंने देखा कि उनकी अवस्था पहलेसे भी खराब हो गई है । सिक्खोंने भी इसका पूर्णतया अनुकरण किया पर उन्हें भी असफलता ही मिली । आज भारतकी जातियोंमें इस सरकारसे सबसे अधिक क्षुब्ध व असन्तुष्ट सिक्ख जाति ही है इसलिये सरकारकी सहायतासे उनकी कठिनाइयाँ दूर नहीं हो सकतीं ।

दूसरा उपाय यह है कि वे हिन्दू-धर्मको छोड़कर ईसाई या मुसलमान हो जाँय । पर यदि धर्म-परिवर्तनसे सांसारिक (इहलौकिक) जीवनमें भी सुख और शान्ति मिल सके तो मैं बिना किसी संकोचके उसकी सलाह दे सकता हूँ । पर धर्म हृदयकी बात है । शारीरिक यातना या असुविधासे धर्म-त्यागकी भावना नहीं उठ सकती । यदि पंचम जातियोंके साथ यह अत्याचारपूर्ण व्यवहार हिन्दू - धर्ममें निहित हो तो उन्हें उचित है कि उस धर्मको तुरन्त त्याग दें और अपनी इस हीनताका सारा दोष उसी हिन्दू-धर्मके सिरपर मढ़ें । पर मैं जानता हूँ कि हिन्दू-धर्ममें अछूतोंका कोई प्रश्न ही नहीं आया है । हिन्दू-धर्मका कथन है कि इस तरहकी बातें उठा देनी चाहिये । इस समय अनेक हिन्दू-समाज-सुधारक हिन्दू-धर्मपर से यह काला धव्बा मिटा देनेके लिये प्राणपणसे यत्नकर रहे हैं । इसलिये धर्म-परिवर्तनसे भी कोई लाभ नहीं हो सकता और न वह उसके लिये उपयुक्त उपचार है । इसलिये तीसरी ही युक्ति उनके लिये शेष रह जाती है । और वह यह है कि वे आत्म-निर्भर हों और सवर्ण हिन्दू अपना धर्म समझकर अपनी पूर्ण इच्छासे उनकी जो कुछ सहायता करें उससे ही अपना काम चलायें । यहीं असहयोगकी आवश्यकता पड़ती है । इस व्यक्त बुराईको दूर करनेके लिये मैं सुसगठित असहयोगकी योजना ही उचित समझता हूँ । पर असहयोगके माने हैं बाहरी सहायतासे एकदम बरी रहना, अपनी शक्तिके उपयोगकी सहायता ही उसका मर्म है । केवल उन स्थानोंमें घुस जाना जहाँ जानेकी मनाही है, असहयोग नहीं है । यदि वह शान्तिपूर्वक जारी किया जा सके तो उसे सविनय-अवज्ञा भले ही कह सकते हैं । पर मैंने यह भली-भांति देख लिया है कि सविनय-अवज्ञाके लिये अधिक शिक्षा और आत्म-संयमकी आवश्यकता है । असहयोग सभी कर सकते हैं पर सविनय-अवज्ञा बहुत कम ही लोग कर सकते हैं । इसलिये उनके साथ जो दुर्व्यवहार किया जा रहा है उसके विरोधमें पंचम-जातियोंको उचित है कि वे हिन्दुओंके साथ तबतक असहयोग कर अपना संबन्ध-विच्छेद कर लें जबतक उनकी उस अयोग्यताका प्रतीकार न कर दिया जाय । पर इसके लिये सुसंगठित प्रयासकी आवश्यकता है । पर जहाँ तक मुझे दिखाई देता है पंचम-जातियोंमें ऐसा कोई नहीं जो असहयोग द्वारा उन्हें सफल-मनोरथ कर सके ।

इसलिये पंचम-जातियोंके लिये सबसे उत्तम उपाय यही है कि वे इस संग्राममें आकर सम्मिलित हो जायँ जिसकी आयोजना सरकारके मुकाबिलेमें हो रही है। पंचम-भाई इस बातको भी साधारणमें ही समझ सकते हैं कि इससे परस्पर सहयोगकी भी संभावना है। क्योंकि भारतकी भिन्न २ जातियाँ मिले बिना सरकारके साथ सफलतापूर्ण असहयोग नहीं कर सकतीं। हिन्दुओंको यह बात भली-भांति समझ लेना चाहिये कि यदि ये लोग सरकारके साथ असहयोग कर उसमें सफलता प्राप्त करना चाहते हैं तो उन्हें पंचम जातियोंको अपनेमें मिलाना होगा, जिस तरह उन्होंने मुसलमानोंको मिलाया है। अहिंसात्मक असहयोग आत्म-शुद्धिका मंत्र है। यह यज्ञ आरंभ हो गया है। इसमें पंचम-जातियां भाग लें या न लें पर हिन्दू-जाति उनकी उपेक्षा नहीं कर सकती क्योंकि इससे उनकी उन्नतिमें कठिन बाधा उपस्थित होने की संभावना है। इसलिये यदि पंचम भाइयोंकी समस्या मुझे प्राणोंसे भी प्यारी है तो भी मैं इस समय केवल राष्ट्रीय-आन्दोलनकी योजनासे ही काम चलाना चाहता हूँ। मुझे पक्का विश्वास है कि यदि हम लोग इस महती समस्याको हल कर लेंगे तो इस इस छोटी समस्याको अवश्य हल कर लें ।

हिन्दी-नवजीवन
२९ अक्तूबर १९२०



मिस्टर मिचलका उत्तर

"पतित जातियाँ" शीर्षक लेखमें मैंने जिन प्रश्नोंका उत्तर दिया था उसका प्रत्युत्तर देते हुये मिस्टर एस० एम० मिचल लिखते हैं:—

"अक्तूबर २७ के 'नवजीवन' में मेरे पत्रका उत्तर देते हुये आपने तो मेरी इतनी बात अवश्य स्वीकार कर ली है कि हम हिन्दुओंको उचित है कि अंग्रेजोंसे कहनेके पहले हमें अपने ही रक्त-रंजित हाथोंको साफ कर लेना चाहिये। पर आप तो पहले वही काम करनेके लिये अंग्रेजोंसे ही कह रहे हैं। आपने इस बातको भी स्वीकार किया है कि मैंने उचित प्रश्न ठीक समय पर छेड़ा है। तो क्या इससे आप यह बात नहीं व्यक्त कर रहे हैं कि आपने इस आन्दोलनको कुछ समय पहले ही चलाया है? इस प्रान्तमें दौरा करते समय आपने अपने किसी भाषणमें यही कहा था कि यदि हम भारतवासी अपनी अन्द-रूनी अयोग्यताको दूर कर दें तो हमें स्वराज्य आपसे आप बिना मांगे मिल जायगा। पर यह देखकर मुझे खेद होता है कि अब आपने अपनी वह राय बदल दी है। इस मत-परिवर्तनको मैं भीषण राष्ट्रीय आपत्ति समझता हूं। पर मैं आपसे विनीत होकर प्रार्थना करूँगा कि हममें से जिनका मन अभी उसी तरहका बना है उनके विषयमें आप गलत

अनुमान न कर लीजियेगा। उसी प्राचीन विश्वासके कारण इस प्रान्तकी अगणित दबी और अब्राह्मण जातियां आपके असहयोग आन्दोलनसे विमुख हो रही हैं और आपके मार्गमें बाधा उपस्थित कर रही हैं। उनके मतसे आपका यह प्रयास विरुद्धाचरण है। उनको इस बातका पक्का विश्वास है कि सम्प्रति इस संसारमें ब्रिटिश राज्य सबसे उत्तम है और आपने अपने प्रयाससे भारतको स्वतंत्र भी कर दिया तो वह स्वतन्त्रा अधिक दिन तक कायम नहीं रह सकती और अफगान या जापानके हाथमें भारत फिर पड़ जायगा। इसके अतिरिक्त जात-पांतके भेद-भावके कारण छिन्न-भिन्न और नष्ट हो जानेकी बहुत कुछ संभावना है जैसा कि पहले कई बार हुआ है। इसलिये वे चाहते हैं कि स्वराज्यकी संस्थापनाके पहले भीतरी दुर्बलता और बाहरी आक्रमणके भयसे भारतको सुरक्षित कर देना चाहिये। इसलिये वे आपको यह धन्यवाद देते हुये कि आपने उन्हें आन्दोलनमें शामिल करनेके लिये निमंत्रित किया है, वे आपके अतिशय कृतज्ञ होंगी यदि आप अपने आन्दोलनको स्थगित कर देंगे और उनके इस काममें योग-दान करेंगे जिसके द्वारा वे भारतको सब तरहसे योग्य बनाना चाहती हैं। आपने 'दासोंके दास' की बड़ी बुराईको दूर करनेसे छोटी बुराई आपसे आप ही दूर हो जायगी, इत्यादि जो बातें लिखी हैं, उसे पढ़नेवाला या सुननेवाला भले ही सन्तुष्ट हो जाय और आपकी प्रशंसा करे पर व्यवहारकुशल आदमीके लिये उनमें कोई सार या तत्वकी बातें नहीं दिखाई देतीं। इस अवस्थापर पहुँचकर भी क्या यह आशा की जा सकती है कि आप अपनी भूलोंको स्वीकार करेंगे और अपने पैरको पीछे हटाकर सामाजिक जीर्णोद्धारके काममें लग जायंगे जिसे स्वयं आप भारतकी स्वाधीनताका सबसे प्रबल उपाय बताते हैं।"

इस पत्रको मैं सहर्ष प्रकाशित करता हूँ। पत्र पढ़नेसे स्पष्ट प्रगट हो जाता है कि मिस्टर मिचल 'नवजीवन' को बराबर नहीं पढ़ते। यदि उन्होंने पढ़ा होता तो उन्हें सबसे पहले विदित हो गया होता कि असहयोग आत्मशुद्धिका प्रधान शस्त्र है। उन्हे विदित हो जायगा कि जिस समय इस असहयोगके द्वारा हम लोग स्वराज्य स्थापित करनेमें सफल हो जाँयगे उस समय अब्राह्मण या परियाका प्रश्न रह ही नहीं जायगा, जिसके हल करनेकी आवश्यकता प्रतीत होगी। मैं इस बातको आज भी स्वीकार करता हूँ कि भारतमें स्वराज्य स्थापित करने के लिये सामाजिक सुधारकी योजना प्रथम होनी चाहिये। पर उस समय तक मैं इस बातको नहीं समझ सका था कि ब्रूटिश शासनका अत्याचार सब बुराईकी तहमें है और इसलिये वह सबसे बढ़कर है। इसलिये यदि यह सरकार अपने पापपूर्ण कामोंके लिये पश्चात्ताप नहीं प्रकट करना चाहती तो उसे उसी तरह नष्ट हो जाना होगा जैसे हिन्दुओंको यदि वे छुआछूतके प्रश्नको अपने समाजके अंदरसे उठाना नहीं चाहते। मेरा और मिस्टर मिचलका मतभेद उसी प्रकारका है जिस प्रकारका मतभेद उन हिन्दुओंका है जो छुआछूतके शैतानी प्रभावके परिणाम पर विचार नहीं करते। मिस्टर मिचल इस बातको नहीं

समझ रहे हैं कि जिस राष्ट्रकी वे सन्तान हैं उनका बृटिश सरकार इस तरह अपमान कर रही है कि वे दिन-पर-दिन गिरते जा रहे हैं। यही कारण है कि वे बृटिश सरकारकी छत्रछायाको स्वीकार करनेके लिये तैयार हैं। पर बृटिश सरकारकी वर्तमान अवस्थामें उसे स्वीकार करना तो मैं घोर पाप समझता हूँ। इसलिये इस सरकारके प्रति मैं उसी उपायका प्रयोग कर रहा हूँ जिस उपायका प्रयोग मैंने हिन्दुओंके छुआछूतको मिटानेके लिये किया होता। अफगान आक्रमणकी चर्चासे मिस्टर मिचल अपने विषयसे बहक गये हैं। इसलिये मैं उनसे प्रार्थना करूँगा कि वे 'नवजीवन'के पिछले लेखोंको पढ़कर देखें उनके प्रश्नोंका उत्तर मिल जायगा।

हिन्दी-नवजीवन
१७ नवंबर १९२०



और भी कठिनाइयाँ

राष्ट्रीय स्कूलोंमें अछूत जातियोंके बालक भर्ती करनेकी मि० एन्ड्रयूजने जो बात उठाई है उस संबन्धमें गुजरात-राष्ट्रीय-विश्वविद्यालयकी सिनेटने एक प्रस्ताव पास किया है। इससे अहमदाबादमें सनसना फैली है। जिससे 'टाइम्स आफ इन्डिया' का एक संवाददाता केवल सन्तुष्ट ही नहीं हुआ है, बल्कि उसे सिनेटकी रचनामें एक दूसरी त्रुटि देखनेका अवसर मिला है। वह यह कि सिनेटमें एक भी मुसलमान मेम्बर नहीं है। इस त्रुटिसे यह न समझना चाहिये कि विश्व-विद्यालयके राष्ट्रीय चरित्रमें अभाव है। हिन्दू-मुसलमानोंकी एकता मौखिक बात नहीं है। इसलिये कृत्रिम परिमाणोंकी आवश्यकता नहीं है। इसका कारण यह है कि राष्ट्रीय शिक्षामें तन, मन, धनसे अपना समय लगानेको अभी तक कोई योग्य उच्च शिक्षित मुसलमान नहीं मिला है। मैं यह बात इसलिये कहता हूँ कि यह जानना चाहिये कि कुछ आदमी इस आन्दोलनकी अप्रतिष्ठा करनेके लिये भ्रमो-त्पादक बातें किया करते हैं। यही एक बाहरकी कठिनाई है, जिसका वर्णन सुगमतासे किया जा सकता है।

अछूत जाति-संबन्धी कठिनाई भीतरी है क्योंकि इससे फूट पैदा हो सकती है जिससे उद्देश्यको हानि पहुँच सकती है—यदि भीतरी कठिनाइयां बराबर बढ़ती रहें तो कोई उद्देश्य कभी सिद्ध नहीं हो सकता। तो भी फूटसे बचनेके लिये सिद्धान्तमें किसी बातका परित्याग नहीं करना चाहिये। यदि आप किसी उद्देश्यके कुछ महत्वपूर्ण अंशोंका परित्याग करें तो आप उसकी उन्नति

नहीं कर सकते। अछूत-जातियोंकी समस्या इस उद्देश्यका बड़ा भारी अंग है। अछूत जातियोंके मिलाये बिना स्वराज्य उसी प्रकार असंभव है। जिस प्रकार हिन्दू-मुसलमान एकताके बिना। मेरी तो यह सम्मति है कि हम साम्राज्य-के इसलिये गुलाम बन गये हैं कि हमने अपने मध्यमें गुलामोंकी सृष्टि की है। गुलामके मालिकको गुलामकी अपेक्षा अधिक धक्का पहुँचता है। जबतक हम भारतकी जनताके पाँचवें भागको गुलामीमें रखेंगे तबतक हम स्वराज्य पानेके योग्य नहीं होंगे। क्या हमने गुलामको पेटके बल नहीं रेंगाया है? क्या हमने उसे गुलाम नहीं कर दिया है। यदि उस गुलामके साथ ऐसा व्यवहार करना हमारा धर्म है तो हमें अलग कर देना भी गोरी जातिका धर्म है। गोरोंका यह कहना है कि हिन्दुस्तानी अपनी वर्तमान अवस्थासे सन्तुष्ट हैं यदि यह ठीक नहीं है तो हमारे लिये यह कहना कभी ठीक हो ही नहीं सकता कि गुलाम अपनी वर्तमान अवस्थासे सन्तुष्ट है। जब हम गुलामीको बढ़ाते हैं तो वह हममें पूर्ण-रूपसे और लिपट जाती है।

गुजरात सिनेटने कुछ सोच-विचारकर ही लोगोंकी चिल्लाहटकी ओर ध्यान नहीं दिया। यह असहयोग आत्म-परिष्कृतिका मार्ग है। हमें चाहिये कि हम पुरानी रद्दी रीते-रस्मसे न लटककर स्वराज्यके उज्ज्वल फलकी चेष्टा करें। रीति-रस्मके कारण ही कुछ जातियोंको अछूत समझनेकी परिपाटी पड़ गई है। अछूत जातियां हिन्दू-समाजसे पृथक हैं यह कोई बात नहीं है। संसार भावमें अग्रसर हुआ है, यद्यपि कार्यमें वह बर्बर बना हुआ है। जो धर्म वास्तविक तत्वोंकी नींवपर नहीं खड़ा किया गया है वह कभी ठहर नहीं सकता। भूलकी प्रतिष्ठा करना धर्मको उसी प्रकार नष्ट कर देगा जैसे रोगकी परवाह न करनेसे वह शरीरका अन्त कर देता है।

हमारी यह सरकार निःशंक है। इसने मुसलमानोंको हिन्दुओंसे पृथककर हमपर शासन किया है। हिन्दुओंके मध्य जो निर्भयता है उससे अपना यह पक्ष सबल करती है। यह अछूत-जातियोंको शेष हिन्दुओंसे तथा अब्राह्मणोंको ब्राह्मणोंसे लड़ाता है। गुजरात-सिनेटने इस कष्टका अन्त नहीं किया है। इसने सिर्फ कठिनाइयां बता दी हैं। यह कष्ट तभी दूर हो सकता है जब हिन्दू जनता अछूतोंको घृणा करना छोड़कर उसे अपनी समाजमें मिला लेगी। स्वराज्यके प्रेमी किसी भी हिन्दूको अछूत जातिका उत्थान करनेके लिये उसी प्रकार निरन्तर उद्योग करना चाहिये जिस प्रकार वह हिन्दू-मुसलमानोंकी एकता बढ़ानेके लिये करता है। हम अछूतोंके साथ अपने जैसा बर्ताव करें और उन्हें वही अधिकार दें जिसके लिये हम लड़ रहे हैं।

हिन्दी-नवजीवन
२४ नवंबर १९२०

अछूतका पाप

यह बड़े सौभाग्यकी बात थी कि अछूतोंके संबन्धवाले प्रस्तावको विषय-निर्धारिणी-समितिने बिना किसी विरोधके स्वीकार कर लिया। राष्ट्रीय महासभाने इस प्रस्तावको स्वीकार कर कि स्वराज्य प्राप्त करनेके लिये हिन्दू धर्मके ऊपरसे यह कलंक मिटा देना अत्यन्त आवश्यक है—बड़ा ही अच्छा काम किया। शैतान तभी तक सफल रहता है जबतक उसके साथी उसकी मदद करते जाते हैं। हम लोगोंपर अधिकार प्राप्त करनेके लिये यह हम लोगोंकी कमजोरियोंको ही ताकता है और उसीपर आक्रमण करता है। इसी तरह यह सरकार भी हमारी बुराइयों या कमजोरियोंसे लाभ उठाकर ही अपना अभिप्राय सिद्ध करती रहती है। यदि हम लोग इसकी इस तरहकी चेष्टाओंसे अपनी रक्षाका प्रबन्ध करना चाहें तो हमें सबसे पहले अपनी बुराइयोंको छोड़ना होगा। यही कारण है कि हमने असहयोगको आत्मशुद्धिका उपाय बतलाया है। जिस समय आत्मशुद्धिके उस तरीकेमें हम सफल हो गये, उसे पूरा कर डाला, उस समय आवश्यक सहायताके अभावमें यह सरकार उसी तरह गिर जायगी जिस तरह सूखे स्थानपर मच्छरोंकी दाल नहीं गलती।

अछूतोंके साथ जो-जो पापाचार हम लोग कर रहे हैं, क्या उसके लिये हमें उचित दण्ड नहीं मिल रहा है? क्या हम लोगोंने जैसा बोया है वैसा नहीं काट रहे हैं, क्या हम लोगोंने अपने बन्धु-बान्धओंपर डायर और ओडायर सा अत्याचार नहीं किया है? जिस तरह हमलोगोंने परिया आदि जातिको अपनेसे अलग कर रखा है, उसी तरह बृटिश उपनिवेशोंमें हम लोग भी बहिष्कृत हैं। हम लोग अपने कुएंसे उन्हें पानी नहीं लेने देते। हम लोग उन्हें घोरतम नीच समझते हैं। हम उनकी परछाइं तक बचाते हैं। जिस तरह हमलोग अंग्रेजोंको अपवाद देते हैं उसी तरह परिया भी हम लोगोंको अपवाद देंगे।

हिन्दू-धर्मपरसे इस कलंकको किस तरह मिटाना चाहिये? हमें औरोंके साथ वही व्यवहार करना चाहिये जो अपने लिये हम दूसरोंसे चाहते हैं। मैंने अंग्रेज पदाधिकारियोंसे बार-बार कहा है कि यदि आप भारतवासियोंके मित्र और नौकर बनना चाहते हैं तो आपको उचित है कि आप अपने उस ऊँचे पदसे नीचे उतर आइये और संरक्षताका दावा छोड़कर अपनी प्रेमपूर्ण कार्यवाहीसे, कि आप लोग हर तरहसे भारतवासियोंके मित्र हैं, हम लोगोंसे उसी बराबरीका व्यवहार कीजिये जिस तरह आप किसी अंग्रेजके साथ करते हैं। पंजाबकी दुर्घटनाके बाद उस विषयमें मैंने एक कदम और भी आगे बढ़ाया है और उनसे कहा है कि आप कृपापूर्वक अपने दिलको भी बदलिये और

अपनी कार्रवाइयोंके लिये पश्चात्ताप कीजिये । उसी तरह हम हिन्दुओंको भी उचित है कि जो बुराई हमलोगोंने की है उसके लिये पश्चाताप प्रगट करें । अपने दिलकी प्रवृत्तिको बदलें और जिस शैतानीके बर्तावके साथ हमने उन्हें दबाया है---जिस बातका कलंक हम भारत सरकारके सिर मढ़ते हैं---उसके लिये पश्चात्ताप करें । केवल चन्देसे स्कूलोंको उनके लिये खोल देनेसे उनका काम न चलेगा, हमें उनपर अपना बड़प्पन नहीं प्रकट करना चाहिये । हमें उन्हें अपना सगा भाई समझना चाहिये, जैसा कि वे वास्तवमें हैं । जिस परम्परागत सम्पत्तिसे हमने उन्हें वंचित किया है, उसे हमें उन्हें अवश्य लौटा देना चाहिये । पर यह काम चन्द उन अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगोंका ही नहीं होना चाहिये बल्कि सर्व-साधारणको अपने हृदयकी प्रेरणासे यह काम करना चाहिये । इस दीर्घ-कालव्यापी सुधारके लिये हमें अनन्त-कालतक ठहरने का समय नहीं है । हमें उसकी पूर्ति इसी वर्षमें कर देनी चाहिये । इसके लिये हमें कठिन तपस्या करनी चाहिये । सुधार स्वराजके बाद नहीं हो सकता । स्वराज्य प्राप्त करनेके पहले ही उसे सम्पूर्ण कर डालना चाहिये ।

अछूत, धर्म-विहित नहीं हैं । बल्कि यह शैतानका धर्म है । अपने लाभके लिये शैतान भी धर्म-ग्रन्थोंका प्रयोग करता है । पर इस तरहके अवतरणोंसे सत्य और विश्वास कहींसे भी नहीं उठ जा सकता । उनका काम है, विश्वासको शुद्ध करना और सत्यको व्यक्त करना । वेदोंमें अश्वमेध-यज्ञकी चर्चा है तो इसके लिये निर्दोष घोड़ोंको हम जला नहीं देंगे । मेरे हृदयमें वेदोंके लिये अपूर्व श्रद्धा है । मैं उसे देवता-प्रदत्त मानता हूँ । उनके शब्दोंमें यह चर्चा हो सकती है, पर प्रकाश डालनेके लिये तो उसके तत्वका निरूपण करना चाहिये । और वेदोंका तत्त्व है : पवित्रता, सचाई, निर्दोषिता, नम्रता, सादगी, क्षमादान, विस्मृत देवत्व और अन्य वे सब बातें जिनसे नर और नारी नम्र और वीर हो सकते हैं । समाजके उन असंख्य न बोलनेवालोंको इस तरह कूड़ेकी तरह समझना तो कोई बहादुरीमें शामिल नहीं है । क्या ईश्वरने हमें शक्ति इसलिये दी है कि हम राष्ट्रके पतनके कारण हों, जैसा कि हम लोगोंने अछूत जातियोंको बना डाला है ?

हिन्दी-नवजीवन
१९ जनवरी १९२१

❀

पंचम जातियाँ

अछूतोंपर जितना अत्याचार मद्रास प्रान्तमें होता है उतना अन्यत्र कहीं भी नहीं होता। यदि ब्राह्मणोंपर उनकी परछाईं भी पड़ जाय तो वे अपनेको अपवित्र समझते हैं। अछूत जातियाँ उन सड़कोंपर से नहीं चल सकतीं जिनपर से ब्राह्मण लोग चलते हैं। अब्राह्मण भी उनके साथ अच्छा बर्ताव नहीं करते, इस तरहसे अछूत जातियां—जिन्हें पंचम कहते हैं—इन दोनों ब्राह्मण और अब्राह्मण-वर्गके बीचमें पड़कर बुरी तरह पीसी जा रही हैं। आश्चर्य तो यह है कि जहाँ सभी की धार्मिकता प्रसिद्ध है वहाँके मन्दिरोंकी चर्चा ही नहीं करनी चाहिये। यहाँके निवासी बड़ी-बड़ी चोटियां रखे, लम्बा तिलक लगायें, खुले बदन इस तरह प्रतीत होते हैं मानों प्राचीन कालके ऋषिगण सशरीर उतर आये हों। पर इन लोगों-की सारी धार्मिकता इन्हीं बाहरी दिखावटों तक ही बस है। जिस भूमिमें शंकरा-चार्य भगवान और महर्षि रामानुजाचार्यने जन्म लिया था उस भूमिके इतने परिश्रमी और कामकी जातिके साथ इस तरहका आचरण समझमें नहीं आता। यहीं पर हमारे बन्धु-बान्धवोंके साथ इस तरहका शैतानी व्यवहार होता है और इसी दक्षिणपर हमारा अनन्य भरोसा है। मैंने उन्हें बराबर समझाया है, उनकी सभाओंमें इस बातको जोर देकर कहा है कि जबतक हम लोग अपने बीचसे इस तरहके पापाचारको नहीं उठा देते तबतक हमें स्वराज्य नहीं मिल सकता। हम लोगोंने उनसे यह भी कह दिया है कि सारे ब्रिटिश समाजमें हमारी गणना इस घृणाके साथ इसीलिये की जाती है कि हमलोगोंने स्वयं अपने घरोंमें उन हजारों अपने भाइयोंको कैदियोंकी तरह अलग कर रक्खा है। असहयोग हृदयमें परिवर्तन लानेके लिये एक शस्त्र है, पर यह परिवर्तन केवल अंग्रेजोंके चित्त-में परिवर्तन हो जानेसे ही नहीं चल सकता बल्कि हमें अपने हृदयमें भी परिवर्तन करना चाहिये। वास्तवमें सच बात तो यह है कि हम सबसे पहले अपने दिलोंमें परिवर्तन करें और तब अंग्रेजोंको इस परिवर्तनके लिये कहें। जो जाति जन्म-भरका कोढ़ एक ही विचारमें साफ कर सकती है, जो जाति फटे-पुराने कपड़ेकी भाँति शराबका त्याग कर सकती है, जो जाति एकाएक अपने प्राचीन व्यवसायको ग्रहण कर सकती है, जो जाति अपने फालतू समयमें ६० करोड़ रुपयेकी मालि-यतका कपड़ा तैयार कर सकती है, उस जातिको हमलोग सुधरी हुई जाति अवश्य कह सकते हैं। उसके इस परिवर्तनका असर संसारके इतिहासपर अवश्य पड़ेगा उसके इस आचरणसे नास्तिक इस बातपर विश्वास करने लगेगा कि ईश्वरकी कृपा कोई वस्तु है और ईश्वर भी है। इसलिये मैं इस बातपर जोर देकर कहता हूँ कि भारतवर्ष अपने चित्तकी वृत्तिको बदल देगा तो संसारमें कोई भी जाति नहीं है

जो उनके स्वराजके अधिकारको उसे इनकार कर सके। यह मैं मानता हूँ कि भारतीय क्षितिजपर अनेक बादल भीषण रूप धारण करके मंडरा रहे हैं, फिर भी मैं इस बातको दावेके साथ कह सकता हूँ कि जिस समय भारत अछूतोंके साथ अपने बुरे व्यवहारके लिये पश्चाताप प्रगट कर लेगा और विदेशी कपड़ोंका पूर्णतया बहिष्कार कर देगा, उसी समय वे अंग्रेज भी भारतका स्वागत करनेके लिये उतारू हो जायेंगे और उसे स्वतंत्र तथा वीर जाति मानने लग जाँयेंगे जो इस समय कठोर हृदयका परिचय दे रहे हैं।। मुझे इस बातका पक्का विश्वास है कि यदि हिंदू चाहें तो इन पंचम जातियोंका उद्धार कर सकते हैं और उनको भी वही अधिकार दे सकते हैं जिसका उपयोग आप कर रहे हैं। और यदि भारतवासी चाहें तो अपनी आवश्यकता भर वे कपड़ा भी तैयार कर सकते हैं, जिस तरह वे अपने लिये भोजन बना लेते हैं। इसलिये मुझे इस बातका भरोसा है कि हम इस वर्षमें स्वराज प्राप्त कर सकते हैं। पर यह परिवर्तन किसी विस्तृत यन्त्रादिकी कार्रवाईसे साध्य नहीं है। केवल ईश्वरकी कृपासे ही हमें यह प्राप्त हो सकता है। इस बातको कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता कि इस समय ईश्वर हम लोगोंमें से प्रत्येकके दिलोंमें बैठा विचित्र तरहसे काम कर रहा है। हर तरहसे कांग्रेसमें काम करनेवालोंका यह धर्म है कि वे इन अछूत भाइयोंकी सहायता करें और हिन्दू तथा अहिंदूसे इस बातकी चेष्टा करें कि किसी भी हिन्दू-धर्मके अनुसार चाहे वह गीता विहित हो, वेद विहित हो, शंकर संप्रदाय हो, या रामानुज संप्रदाय हो, किसीमें भी किसी मनुष्यके साथ चाहे वह कितना भी गिरा क्यों न हो—इस तरहका व्यवहार विहित नहीं है। प्रत्येक कॉंग्रेसमें काम करनेवालोंका धर्म है कि कट्टर हिन्दुओंको विनम्र भावसे इस तरह समझावें कि अछूतोंके प्रति इस तरहकी जड़ता अहिंसाके भावके प्रतिकूल है।

हिंदी-नवजीवन
२९ सितम्बर १९२१



अन्त्यज परिषद

गोधरा परिषदके बादसे हम (गुजरातमें) अन्त्यज परिषद करते आये हैं। पर इस साल उसका महत्व अधिक है उसका एक कारण यह है कि मामा साहब फड़के उसके सभापति हैं, दूसरा यह कि मैं आ गया हूँ। मैंने बारडोली और गुजरातसे चाहा था कि अस्पृश्यता तुरन्त हट जानी चाहिये। पर अभी तक न हट सकी। इसमें दैवके सिवा किसको दोष दें? हिन्दू जातिकी

रग-रगमें अस्पृश्यताका पाप पैठ गया है। इससे पापको ही पुण्य मान बैठे हैं। जिस बातको सारा संसार पाप-रूप मानता है और जिसके कारण हिन्दू-जाति आज सारे संसारमें तिरस्कृत है, वह हमें दिखाई ही नहीं देता। पेटलाद (गुजरात) के पास एक दुर्घटना हुई। उसके सम्बन्धमें एक महाशय लिखते हैं:—

"एक अन्त्यज १–५–२४ ई० के दिन इस प्रकार पीटा गया कि वह पेटलाद स्टेशनपर रेलके एक खानेमें बैठा हुआ था। उसके साथवाले खानेमें कितने बनिये बैठे हुए थे। ढेड़को बैठा हुआ देखकर एक उठा और उसे चपत जड़ दिया। बेचारा जी लेकर भागा। पर वे उसके पीछे पड़े उसे पकड़कर इतना पीटा कि जिसकी हद नहीं। यदि अन्त्य जोद्धार महासभाके कामका एक अंग न होता तो नहीं कह सकते कि बेचारेकी क्या गति होती? तीन चार मुसलमान और तीन चार हिन्दू बीचमें पड़कर छुड़ाने गये। ज्यों-ज्यों छुड़ाते त्यों-त्यों वे और मारनेको टपकते। यह हाल देखकर हमारी आँखोंमें आँसू छलछला गये। आप यदि मौजूद होते तो आपकी आत्माको कितना क्लेश होता, उसका ख्याल नहीं किया जा सकता।"

ऐसी दुर्घटना आज भी हो सकती है और सो भी पेटलाद स्टेशनपर? यह एक ही मिसाल नहीं है। जहाँ-तहाँ अभी ऐसी क्रूरताका बर्ताव हुआ ही करता है। इस दयाजनक हालतको दूर करनेके लिये हर एक महासभाके हिन्दूको अन्त्यज-रक्षक हो जाना चाहिये और जहां ट्रेनमें अन्त्यज दिखाई दें वहाँ उन्हें उचित है कि उनकी पूरी तरह रक्षा करें। अन्त्यजोंको कोई पीटे तो बीचमें पड़कर वे उसे अपनेपर झेलें। यही सबसे बड़ा तरीका है। पर इससे इस रोगकी जड़ नहीं मिट सकती। जड़ मिटानेके लिये अस्पृश्यता-निवारक हलचल अधिक व्यापक होनी चाहिये। व्यापक तभी हो सकती है जब महासभाके सभ्य, सच्चे बन जाँय अभी तो उन्हींके अन्दर अस्पृश्यता घर कर रही है। महासभाके कितने ही सज्जन अन्त्यजोंको राष्ट्रीय पाठशालामें जगह नहीं देते। उनका विश्वास कच्चा है। अन्त्यज परिषद् ऐसे शंकित चित्त लोगोंको महासभा छोड़ देनेकी प्रार्थना करे और अन्त्यजोंमें वे इस बातकी जाँच करें कि उन्हें रेलमें सफर करनेमें किन-किन बातोंकी दिक्कतें पेश आती हैं और उनके इलाज खोजें। उन्हें बतावें कि वे अपनी रक्षा किस तरह करें।

उनके लिये पाठशालाएँ बढ़ाना, कताई बुनाई आदिकी वृद्धि करना, शराब वगैरह छोड़नेकी प्रेरणा करना आदि काम भी उसके साथ हुई हैं। हरएक कार्यमें विघ्न तो हुआ ही करते हैं। परन्तु इस कार्यके लिए दृढ़ स्वयंसेवक मिल जांय तो अबतक जो काम हुआ है उससे बहुत अधिक हो सकता है। अन्त्यज परिषद् यदि सच्चे स्वयंसेवकोंकी संख्या बढ़ा सके तो यह काम बड़ा ही कीमती होगा।

हिन्दी-नवजीवन
११ मई १९२४

धर्म संकट

"यहाँ—नामक एक राजपूत हैं। वे अन्त्यजोद्धारके काममें बड़ी दिलचस्पी लेते हैं। उन्होंने बड़ी मददकी है। अन्त्यजोंके छूनेके कारण उनकी जाति उनपर बहुत बिगड़ी है। बहुत समझानेपर उनकी जातिवाले कहते हैं कि—को अन्त्यज-स्पर्शके बाद प्रायश्चित करना चाहिये। यदि प्रायश्चित न करें तो उसे जातिसे बाहर निकाल देंगे। पर वे महाशय सिद्धान्तकी रूसे प्रायश्चित करना इन्कार करते हैं।"

ऐसा एक दयाजनक पत्र मेरे पास पड़ा है। जो सज्जन प्रायश्चित करनेसे इन्कार करते हैं उन्हें मैं धन्यवाद देता हूं। जब कि हम अस्पृश्यताको पाप मानते हैं, तब प्रायश्चित करके अपने ही सिद्धान्तको तिलांजली कैसे दें? जातिवालोंको हम नम्रतापूर्वक समझावें; पर यदि वे न मानें तो जातिसे बाहर होनेका दण्ड विनय-पूर्वक सहन करें; परन्तु प्रायश्चित तो हरगिज न करें। मेरी यही मजबूत राय है।

हिन्दी-नवजीवन
११ मई १९२४



अस्पृश्यता और स्वराज्य

एक सज्जन गम्भीरताके साथ लिखते हैं:—"अस्पृश्यताका अर्थ मुझे विचित्र मालूम होता है। क्योंकि आम तौर पर स्पृश्य नामक कोई जाति हुई नहीं। बिना जरूरतके शायद ही कोई किसीके बदनको छूता हो। "अछूत" माने जानेवाले लोगोंसे भिन्न लोगोंमें ऐसी प्रथा है कि वे एक दूसरेके पास आने जानेमें बुराई नहीं समझते। बस। परन्तु कोई शख्स जान-बूझकर किसीको नहीं छूता। इसी तरह अगर 'अछूत' अपने कामसे काम रक्खें और दूसरे लोग अपने कामसे काम रक्खें तो क्या इस जटिल प्रश्नका निपटारा न होगा?

"मुझे विश्वास है कि पापके धोनेके लिये खास तौर पर 'अछूत'के पास जाकर उसे छूनेकी आप जरूरत न बतावेंगे और अगर साक्षात् स्पर्शकी आवश्यकता न हो तो इस पापको अस्पृश्यताके नामसे पुकारनेका क्या अर्थ है? आप जो अस्पृश्यता शब्दका प्रयोग करते हैं इससे ऐसा सूचित होता है कि इस बुराईको दूर करनेके लिए सरेदस्त छूना जरूरी है। और मैं समझता हूं कि आपकी इस हलचलपर पुराने विचारके लोग जो

आपत्ति करते हैं उसका कारण यही है । मैं नहीं समझता कि मैं अपने भाईको भी बहुत बार छूता हूँगा। सच पूछिये तो मेरे इस प्रश्नके निपटानेके लिये तैयार रहनेपर भी मेरे लिये दूसरे शख्सका छूना जरूरी नहीं और फायदेमन्द भी नहीं । इसीलिये मेरी रायमें 'दूरता' शब्द ही इस समाजकी हालतको अधिक सचाईके साथ व्यंजित करता है । और जब तक दूरता दूर न हो, सहिष्णुताके भाव हमारे हृदयमें न उपजें, तबतक बाहरी स्पृश्यताकी बढ़तीसे कुछ लाभ नहीं हो सकता ।

"फिर इस पापसे स्वराज्यकी स्थापनाका क्या वास्ता है, यह मेरी समझमें नहीं आता । हिन्दू समाजमें अनेक दूषण हैं। उनमें एक दूरता भी है । शायद यह सबसे बड़ा हो । परन्तु जबतक समाज अपनी हस्ती रखता है तबतक ऐसे पाप भी जरूर कायम रहेंगे । क्योंकि कोई समाज ऐसी बराईसे खाली नहीं । यह बुराई किस तरह स्वराज्यके लिये बाधा-रूप है और आपने किस ख्यालसे स्वराज्यके योग्य होनेकी पहली शर्त अस्पृश्यता-निवारणको रक्खा है ? स्वराज्य मिलनेके बाद मौजूदा हालतको हम लोगोंकी राजी खुशीसे नहीं तो क्या कानून बनाकर नहीं सुधार सकते ?

हिन्दू-मुस्लिम एकताकी अनिवार्य आवश्यकताको मैं समझ सकता हूँ । क्योंकि दोनों पक्षवालोंके झगड़ेसे सम्भव है सरकार फायदा उठावे और हमारी मांगोंको जबतक चाहे झमेलेमें डालती रहे। 'स्पृश्यता'का सामाजिक, धार्मिक और मानवी रूप में समझ सकता हूँ। परन्तु यह बात मेरी समझमें नहीं आती कि हम इसको ऐसा राजनैतिक मसला क्यों बना लें जिसके निपटारेके बिना स्वराज्य असम्भव हो जाय ।"

शब्दके लिये मेरा कोई झगड़ा नहीं । जिस प्रथाकी बदौलत हिन्दुओंका एक बड़ा हिस्सा पशुसे भी अधम अवस्थाको जा पहुँचा है, उसके लिये मेरे रोम-रोममें घृणा व्याप्त हो रही है। बेचारे अन्त्यजको—स्पृश्य शब्दका प्रयोग नहीं करता—यदि अपने रास्ते जाने दिया जाय तो इस सवालका निपटारा बहुत कुछ हो सकता है। पर दुःखकी बात यह है कि उसे न तो विचार शक्ति है और न उसके लिये कोई रास्ता ही है। क्या पशुके लिये उसके मालिककी मरजीके अलावा कोई विचार शक्ति या रास्ता हो सकता है ? अन्त्यजके लिए कोई ऐसा स्थान है जिसे वह अपना कह सके ? क्या पंचम (अछूत) को कोई ऐसी जगह है जिसे वह अपनी समझता हो ? जिन सड़कोंको वह साफ करता है, जिनके लिये वह अपने खूनको पसीना बनाकर देता है, उन्हीं पर वह चलने नहीं पाता। वह औरोंकी तरह कपड़े भी नहीं पहन सकता। लेखक सहिष्णुताकी बात करते हैं। यह कहना कि हम हिन्दू लोग पंचम-सदस्योंके साथ जरा भी सहिष्णुताका बर्ताव करते हैं, केवल वाणी-व्यभिचार है। एक तो हमने उन्हें नीचे गिरा दिया और फिर भी उन्हींके पतनका उपयोग, उनके उत्थानके खिलाफ करने की धृष्टता हम करते हैं।

मेरे नजदीक स्वराज्यका मतलब है हमारे देशके हीनसे हीन लोगोंकी आजादी। जब कि हम लोग दुःखावस्थामें हैं तब यदि पंचमोंके भाग्य न जागे तो जब कि हम स्वराज्यके नशेमें मदमाते हो जायंगे, तब उनकी कौन सुनेगा ? यदि हमारे लिये स्वराज्य प्राप्तिकी यह शर्त आवश्यक है कि हम मुसलमानोंसे मेल कर लें तो यह भी उतना ही आवश्यक है कि इसके पहले कि जरा भी इन्साफ या आत्म-सम्मानके साथ हम स्वराज्यकी बातें करें, हम पंचम भाइयोंको अपनालें। मुझे इस बातमें कुछ भी दिलचस्पी नहीं है कि हिन्दुस्तानकी गर्दनसे महज अंग्रेजोंका जुआ हट जाय। मैं तो हिन्दुस्तानके गलेसे हर किस्मके जुएको हटा देनेपर तुला हुआ हूँ। मैं नहीं चाहता कि भूतको गद्दीसे हटाकर पिशाचको बिठाऊँ। इसीलिये मेरे नजदीक तो स्वराज्यके आन्दोलनके मानी हैं आत्मशुद्धिका आन्दोलन।

हिन्दी-नवजीवन
२२ जून १९२४

७

मैं हारा

कभी कभी कुछ सज्जन मेरे पास आकर मुझसे शास्त्रार्थ करना चाहते हैं। "दूसरे लोग अस्पृश्यताके बारेमें चाहे कुछ कहते रहें पर आपको तो इसका नाम तक मुँहसे न निकालना चाहिये क्योंकि आप धर्मका नाम लेकर बातें करते हैं। इससे लोगोंको धोखा होता है। अगर धर्म-शास्त्रोंने अस्पृश्यताको पाप माना हो तो या तो उन वचनोंको पेश करके आप साबित कर दीजिये, नहीं तो मैं वेदोंके प्रमाणोंसे यह दिखला सकता हूँ कि उसमें अस्पृश्यताके लिये काफी जगह है। यदि अस्पृश्यता नष्ट हो जाय तो सनातन-धर्मका लोप हो जाय।" इस तरहकी बातें एक स्वामीजीने आकर मुझसे कहीं।

सुनकर मैं चौंका। मैंने तो सिर्फ इतना ही कह दिया कि मैं तो वाद-विवाद करनेमें अपनी हार हमेशा मान लेता हूँ। मैं आपके साथ शास्त्रार्थ नहीं कर सकता। मैं पहलेसे यह बात कबूल कर लेता हूँ कि मैं आपके सामने बहसमें नहीं टिक सकता। फिर भी मैं यह जरूर कहता रहूँगा कि अस्पृश्यता हिन्दू-धर्ममें महापाप है। इससे स्वामीजीको सन्तोष नहीं हुआ। हाँ, मैंने अपने दिलमें पूर्ण सन्तोष मान लिया। मैं तो यह मुख्तसिर जवाब देकर पार हुआ।

जब स्वामीजी आये तब मैं 'यंग-इण्डिया' और 'नवजीवन'के पाठकोंको रिझानेके नित्य कर्ममें लीन था। एक क्षण भी बातचीतमें लगानेके लिये तैयार न था। इसलिए "नं-ना" मानों मुझे रामबाण दवा मालूम हुई। हमारे-बूढ़ोंने हमें बहुत कुछ अनुभव शास्त्र सिखा रखा है। वह मेरे लिये बस था। "एक नं-ना छत्तीस रोग हरता है।" इस कहावतका प्रयोग मैंने बहुत बार किया है। और मैं तो समझता हूँ कि एक नं-ना छत्तीस ही नहीं बल्कि छत्तीसों रोगोंको दूर करता है।

शास्त्रार्थका पेशा वकीलोंके पेशेकी तरह है। शास्त्रार्थवादी स्याहका सफेद और सफेदका स्याह करके दिखा सकता है। किसे इस बातका अनुभव नहीं होता। बहुतसे वेद-वादरत प्राणी वेदोंसे अनेक बातें साबित करते हैं और वैसे ही नाम धारण करनेवाले दूसरे कितने ही लोग उनके विरुद्ध बातें उतने ही जोरोंके साथ उनमेंसे सिद्ध करते हैं। मैं अपने जैसे प्रकृत मनुष्योंको एक आसान तरीका बताता हूँ जिसका अनुभव मैंने किया है। मैंने हरएक धर्मका विचार करके उनका लघुत्तम निकाल रक्खा है। कितने ही सिद्धान्त अचल-वत् मालूम होते हैं। अनुभव उनका अनादर नहीं कर सकता। भक्त तुलसीदासजीने आधे दोहेमें कह दिया है "दया धर्मको मूल है"। 'सत्यके बिना दूसरा धर्म नहीं' यह सनातन वचन है। किसी भी धर्मने इन सूत्रोंको अस्वीकार नहीं किया है। ऐसे हरएक वचनको जिसके लिये धर्मशास्त्रका वचन होनेका दावा किया गया हो, सत्यकी निहाईपर दया-रूपी हथौड़ेसे पीटकर देख लेना चाहिये। अगर वह पक्का मालूम हो और टूट न जाय तो ठीक समझना चाहिये। नहीं तो हजारों शास्त्रवादियोंके रहते हुए भी 'नेति' 'नेति' कहते रहना चाहिये। अखा (एक गुजराती कवि) की अनुभव वाणीमें शास्त्रार्थ एक अन्धा कुआँ है। जो उसमें गिरता है वही मरता है। आत्मा एक है। शरीर-मात्रमें उसका निवास है। ऐसी दशामें अस्पृश्य किसे कहना चाहिये?

यहाँ हमें अस्पृश्यताका अर्थ भी समझ लेना चाहिये। रजस्वला स्त्री अस्पृश्य है। स्मशानसे आये हुये लोग अस्पृश्य हैं। मैला उठानेपर स्वच्छता न होने तक मनुष्य अस्पृश्य है। इस अस्पृश्यताको तो हम अपने माता-पिताके साथ भी पालते हैं। पर रजस्वला माता यदि बीमार हो और उसका लड़का उस समय उसकी सेवा न करे तो वह नरकवासी हो। फिर भले ही वह अस्पृश्य क्यों न हो जाय। मैला उठानेवाले सब अन्त्यज हैं। वे यदि मैला उठाकर न नहावें और हम उनसे छू कर नहाना चाहें तो नहा डालें। परन्तु ऐसे मामूली और व्यावहारिक विचारमेंसे अन्त्यज जातिको पैदा करना और उन्हें गाँवके एक कोनेमें निकाल देना, जानवरसे भी अधिक त्याज्य मानना, वह चाहे मरे या जीये उसका ख्याल तक न करना, उसके पल्लेमें जूठन और सड़ा-गला खाना

फेंकना, उसके बाल-बच्चोंको न पढ़ाना, वे अगर बीमार हो जाँय तो उनकी दवा दरपनमें मदद न देना, उन्हें मन्दिरोंमें न पैठने देना और कुएँपर पानी न भरने देना —यह धर्म नहीं अधर्म है। इसे हिन्दू-धर्मका अंग मानकर हम हिन्दू धर्मकी जड़ उखाड़नेकी तैयारी कर रहे हैं।

ऐसी अस्पृश्यता घातक है। यह असिहष्णुताकी पराकाष्ठा है। इसे दूर करनेका प्रयत्न करना और ऐसा करते हुए मर मिटना हरएक हिन्दूका परम-धर्म है। मुझे इस विषयमें जरा भी सन्देह नहीं रह गया है।

हिन्दी-नवजीवन
२९ जून १९२४



कुछ उचित प्रश्न

कुछ दिन हुए मैंने अस्पृश्यताके बारेमें बंगालसे प्राप्त एक विचारपूर्ण पत्र छापा था। उसके लेखक आज भी बड़ी सरगर्मीसे उस विषयमें खोज कर रहे हैं। अब मद्रासकी तरफसे भी एक सज्जनने पत्र लिख कर उसकी वैसी ही खोज करनेके लिये कितने ही प्रश्न पूछे हैं। इस जटिल प्रश्नकी खोज करनेके लिये कट्टर हिन्दू लोग भी प्रवृत्त हुए हैं, यह बड़ा शुभ चिन्ह है। इसमें कोई शक नहीं कि प्रश्न पूछनेवालोंको सच्ची उत्कंठा है। प्रश्न नमूना रूप हैं। क्योंकि इतनी बड़ी सूचीमें एक भी प्रश्न ऐसा न होगा जो मेरे प्रवासके दरम्यान मुझसे न पूछा गया हो। इन सज्जनके पूछे इन जटिल प्रश्नोंको हल करनेका प्रयत्न इसी आशामें करता हूँ कि मेरे जवाबसे पत्र लिखनेवाले सज्जनको—जो एक कार्यकर्त्ता और सच्चे शोधक होनेका दावा करते हैं और दूसरे कार्यकर्त्तागण और शोधकोंको कुछ रास्ता दिखाई दे।

(१) अछूत-पनको दूर करनेके लिये असली उपाय क्या क्या करने चाहिये ?

(अ) अस्पृश्योंके लिये सब सार्वजनिक शालायें, मन्दिर, रास्ते, जो अब्राह्मणोंके लिये खुले हैं और जो किसी खास जातिके लिये नहीं होते, खोल दिये जांय।

(ब) ऊँची जातिवाले हिन्दूओंको चाहिये कि उनके बच्चोंके लिये मदरसें खोलें, जहाँ जरूरत हो वहाँ उनके लिये कुआँ खोदें और उन्हें सब प्रकारके

आवश्यक मदद पहुंचायें—जैसे उनकी नशेकी आदत छुड़ाने और सफाईके नियम पालन करनेका रिवाज डालना और उन्हें दवा दरपनकी मदद पहुँचाना।

(२) जब कि अछूत-पन बिल्कुल दूर हो जायगा तब अछूतोंका धार्मिक दर्जा क्या होगा ?

उनकी धार्मिक स्थिति वैसी ही मानी जायगी जैसी कि उच्च हिन्दुओं-की मानी जाती है और इसलिये वे शूद्र कहे जाँयगे, अतिशूद्र नहीं ?

(३) जब कि अछूत-पन दूर कर दिया जायगा तब अछूतों और ऊँचे दर्जेके कट्टर ब्राह्मणोंका क्या संबन्ध रहेगा ?

जैसे कि अब्राह्मण हिन्दुओंके साथ है।

(४) क्या आप जातियोंको मिला देनेका प्रतिपादन करते हैं ?

मैं सब जातियाँ तोड़कर सिर्फ चार ही वर्ण रक्खूँगा।

(५) अछूत लोग मौजूदा देव-मन्दिरोंमें हस्तक्षेप न करते हुए अपने लिये नये मन्दिर क्यों न बना लें ?

ऊँची कहलानेवाली जातियोंने ऐसे साहसके लिये उनमें अधिक शक्ति ही नहीं रहने दी है। यह कहना कि वे हमारे मन्दिरोंमें दखल करते हैं, इस सवालपर गलत तौरपर विचार करना है। हम ऊँची हिन्दू जातियाँ कहानेवालोंको इन्हें हिन्दुओंके सर्वसाधारण मन्दिरोंमें आने देना चाहिये और इस तरह अपने इस कर्तव्यका पालन करना चाहिये।

(६) क्या आप जातिगत प्रतिनिधित्वके पक्षपाती हैं और क्या आपका यह भी मत है कि अछूतोंको तमाम शासन संस्थाओंमें प्रतिनिधि भेजनेका हक होना चाहिये ?

नहीं, मैं यह नहीं कहता। लेकिन यदि प्रभावशाली जातियोंकी तरफसे जान-बूझकर अस्पृश्योंको अलग रखा जाय तो इस तरह उन्हें अलग रखना अनुचित होगा और यह स्वराज्यके रास्तेमें रुकावट डालेगा। जुदी-जुदी जातियोंके प्रतिनिधित्वको मैं स्वीकार नहीं करता। इसका मतलब यह नहीं है कि किसी एक जातिको प्रतिनिधित्व न मिले। बल्कि इससे तो उल्टा प्रतिनिधित्व रखनेवाली जातियोंपर यह भार डाला जाता है कि वे उन जातियोंके प्रतिनिधित्वोंकी ठीक-ठीक रक्षा करें, जिनके प्रतिनिधि न हों या जिनके प्रतिनिधि कम हों।

(७) क्या आप वर्णाश्रम-धर्मको मानते हैं ?

हाँ, लेकिन आज तो वर्णोंका खाका उड़ाया जाता है। आश्रमका ठिकाना नहीं और धर्मका विपर्यय हो रहा है। सारी व्यवस्थाका ही पुनःयोजन होना

चाहिये और धर्मके संबन्धमें हुई नयी-नयी खोजोंके साथ उसका ऐक्य स्थापित होना चाहिये।

(८) क्या आप यह नहीं मानते कि भारतवर्ष कर्म-भूमि है और इसमें जन्म पाये हर शख्सको अपने भले बुरे पूर्व-कर्मके ही अनुसार विद्या, बुद्धि, धन और प्रतिष्ठा मिलती है ?

पत्र-लेखक सज्जन जैसे मानते हैं वैसे नहीं। क्योंकि हर शख्स कहीं क्यों न हो जैसा करेगा वैसा पावेगा। लेकिन भारतवर्ष खास करके भोग-भूमिके विपरीत अर्थमें कर्म-भूमि है, कर्तव्य-भूमि है।

(९) अछूतपनके दूर करनेकी बात करनेके पहले क्या अछूतोंमें शिक्षा-प्रचार और सुधार होना लाजिमी शर्त नहीं है ?

अस्पृश्यता दूर किये बिना अस्पृश्योंमें सुधार या प्रचार नहीं हो सकता।

(१०) क्या यह बात कुदरती नहीं है, जैसी कि होनी चाहिये कि शराब न पीनेवाले शराब पीनेवालेसे परहेज रखते हैं और शाकाहारी अशाकाहारीसे ?

यह आवश्यक नहीं है। शराब न पीनेवाला अपने शराब पीनेवाले भाईको उस बुरी आदतसे बचानेके लिये उसके पास जाकर अपना कर्तव्य करेगा और इसी प्रकार मांस न खानेवाला खानेवालोंको ढूँढ़ेगा।

(११) क्या यह बात सच नहीं है कि एक शुद्ध (इस अर्थमें कि वह मद्यपी नहीं है और शाकाहारी है) आदमी आसानीसे अशुद्ध (इस अर्थमें कि वह मद्यपी और अशाकाहारी है) हो जाता है जब कि वह उन लोगोंमें मिलता जुलता है जो शराब पीते हैं, हिंसा करते हैं और मांस खाते हैं ?

यह कोई आवश्यक बात नहीं है कि वह शख्स जो उसकी बुराई नहीं जानता है यदि शराब पीये या मांस खाये तो वह अपवित्र (नापाक) है। लेकिन मैं समझता हूँ कि बुरे आदमीकी संगत करनेसे बुराई होना संभव है। इस मामलेमें तो अस्पृश्योंके साथ किसीकी संगत करनेकी तो कोई बात ही नहीं की गई है।

(१२) कुछ कट्टर ब्राह्मण जो दूसरी जातियोंसे (जिनमें अछूत भी शामिल हैं) नहीं मिलते जुलते हैं और अपनी एक अलहदा जाति बनाकर अपनी आध्यात्मिक उन्नति करते हैं, उसका कारण क्या यही नहीं है ?

वह आध्यात्मिक स्थिति जिसकी रक्षाके लिये चारों तरफसे बन्द रहना पड़ता है, बड़ी कमजोर होनी चाहिये और अलावा इसके वे दिन भी गये जब कि मनुष्य सदा एकान्तमें रह कर अपने गुणोंकी रक्षा करता था।

(१३) अछूतपनको दूर करनेका प्रतिपादन करके क्या आप भारतके

धर्म और वर्ण-व्यवस्था (वर्णाश्रम-धर्म) में दखल नहीं देते हैं—फिर वह धर्म और व्यवस्था चाहे अच्छी-चीज हो या बुरी ?

सिर्फ एक सुधारकी हिमायत करने ही से मैं कैसे किसीका दखल करता हूँ ? दखल करना तो तभी कहा जाता जब कि मैं जो लोग अस्पृश्यता कायम रखते हैं, उनपर जोरो-जुल्म करके अस्पृश्यता-निवारणका पक्ष समर्थन करता होता।

(१४) पुराने कट्टर ब्राह्मणोंको इसका विश्वास कराये बिना ही उनके धर्ममें दखल करनेसे क्या आप उनके प्रति हिंसाके दोषी न होंगे ?

मैं कट्टर ब्राह्मणोंके प्रति हिंसाका दोषी नहीं हो सकता, क्योंकि मैं बिना विश्वास उत्पन्न किये उनके धर्ममें कोई दखल नहीं करता।

(१५) ब्राह्मण लोग जो और दूसरी जातियोंको स्पर्श नहीं करते, उनके साथ खाना नहीं खाते, शादी नहीं करते, अस्पृश्यता दोषके दोषी हैं या नहीं ?

दूसरी जातिके लोगोंको स्पर्श करनेसे यदि वे इन्कार करते हैं तो वे अवश्य दोषी हैं।

(१६) मनुष्यके हकका अमल करनेके लिये अस्पृश्य लोग ब्राह्मणोंके अग्रहारमें घूमें तो इससे क्या उनकी क्षुधा तृप्त होगी ?

मनुष्य सिर्फ रोटी खाकर नहीं जीता है। बहुतसे लोग खानेसे आत्म-सम्मानको अधिक पसन्द करते हैं।

(१७) अस्पृश्य लोग इतने शिक्षित नहीं कि वे अहिंसात्मक असहयोगके सिद्धान्तको पूरी तरह समझ सकें और ब्राह्मण लोग राजनीतिके बनिस्बत धर्मकी ज्यादः चिन्ता करते हैं। सो क्या इस बारेमें सत्याग्रह करनेसे वह हिंसात्मक न हो उठेगा ?

यदि इससे वायकोमके प्रति इशारा किया गया है तो अनुभवसे यह बात मालूम हुई है कि अस्पृश्योंने आश्चर्यजनक आत्म-संयम दिखाया है। सवालका दूसरा भाग यह सूचित करता है कि ब्राह्मण लोग जिनका इससे संबन्ध है, संभव है मारपीट कर बैठें। यदि ऐसा करेंगे तो मुझे बड़ा अफसोस होगा। मेरी रायमें तब वे धर्मके प्रति सम्मानके बदले धर्मका अज्ञान और उसके प्रति नफ-रत ही जाहिर करेंगे।

(१८) क्या आपका यह कहना है कि जात-पाँत धर्म और विश्वासके किसी प्रकारके भेदके बिना ही सबको समान हो जाना चाहिये।

मनुष्यत्वके प्राथमिक हकोंके बारेमें कानूनकी नजरोंमें तो यही होना चाहिये जिस तरह कि जात-पाँत और वर्णका लिहाज रखे बिना हम लोगोंमें भूख, प्यास इत्यादि सर्व-सामान्य है।

(१९) यह देखते हुये कि महान आत्मायें ही, जो कि अपना कर्म-जीवन

समाप्त कर चुकी हैं, उच्च दार्शनिक सिद्धान्तको पहचान सकी हैं और उसका पालन कर चुकी हैं, मामूली गृहस्थ नहीं ;क्योंकि वे ऋपियोंके बताए मार्गका अनुसरण करते हैं और ऐसा करते हुए संयमशील होकर जन्म-मरणके फेरसे छुटकारा पाते हैं, क्या वह सिद्धान्त एक मामूली गृहस्थके लिये व्यवहारमें किसी मसरफका होगा ?

इस सीधे-साधे सिद्धान्तको माननेमें केवल जन्मके कारण कोई प्राणी अछूत नहीं माना जा सकता। कोई उच्च दार्शनिक सिद्धान्त बीचमें नहीं आता। यह सिद्धान्त इतना सरल है कि अकेले कट्टर हिन्दुओंको छोड़कर सारी दुनिया उसकी कायल है। और इस बातपर कि ऋपियोंने वैसे अछूतपनकी शिक्षा दी है जैसा कि हम पाल रहे हैं, मैंने आपत्ति ही उठाई है ।

हिन्दी-नवजीवन
५ फरवरी १९२५



बंगालके अछूत

बंगालसे एक सज्जन पत्र लिखकर पूछते हैं:—

(१) बंगालमें अछूतोंको कुओंसे पानी नहीं लेने देते और जिस जगह पीनेका पानी रखा हो वहाँ उन्हें जाने भी नहीं देते। इस बुराईको दूर करनेके लिये क्या करना चाहिये ? यदि हम उनके लिये अलग कुएं खुदवायें और अलग शालाएँ स्थापित करें तो इसके माने इस बुराईके लिये छूट देना होगा ।

(२) बंगालके अछूतोंका झुकाव इस बातकी तरफ है कि ऊंची जातिवाले उनके हाथका पानी पीयें। लेकिन वे खुद अपनेसे नीची जातिवालोंके हाथका पानी लेनेंसे इन्कार करते हैं । उनकी इस गलतीको सुधारनेके लिये क्या करना चाहिये ?

(३) बंगालकी हिन्दू महासभा और आमतौर पर हिन्दू लोग लोगोंसे कहते हैं कि अछूतोंके हाथका पानी पीनेका विचार आपको पसन्द नहीं है ।

मेरे उत्तर ये हैं–

(१) इस बुराईको दूर करनेका रास्ता तो है अछूतोंके हाथका पानी पीना। मैं यह नहीं ख्याल करता कि उनके लिये अलग कुआँ खुदवानेसे यह बुराई कायम रहेगी। अछूतपनके परिणामोंको दूर करने के लिये बहुत समय लगेगा। इस डरसे कि सार्वजनिक कुओंका उपयोग उन्हें न करने दिया जायगा अछूतोंको अलग कुएं बनवा देने से जो मदद मिलती हो उसे रोक रखना ठीक न होगा। मेरा

विश्वास तो यह है कि उनके लिये यदि हम अच्छे कुएँ बनवावेंगे तो बहुत से लोग उसका इस्तेमाल करेंगे। ऊँची जाति वाले हिन्दू उनके प्रति अपने कर्तव्यका ख्याल करके उनके संबन्धमें अपने वहमोंको दूर करते रहेंगे और इसके साथ ही साथ अछूतोंमें भी सुधार होता रहना चाहिये।

(२) जब ऊंचे कहलानेवाले हिन्दू अछूतोंको छूना शुरू कर देगें तब अछूतोंमें भी अछूतपन कुदरती तौरपर ही नष्ट हो जायगा। अछूतोंमें जो सबसे नीचे दरजेके हैं उन्हींसे हमारा कार्य शुरू होना चाहिये।

(३) मैं यह नहीं जानता कि बंगालकी महासभा मेरे नामसे क्या कहती है। मेरी स्थिति तो बिल्कुल साफ है। अछूतोंको शूद्रोंमें गिनना चाहिये और उनके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिये जैसा कि हम शूद्रोंके साथ करते हैं और चूंकि हम शूद्रोंके हाथका पानी पीते हैं, इसलिये हमें अछूतोंके हाथका पानी पीने से झिझकना नहीं चाहिये।

हिन्दी-नवजीवन
१९ फरवरी १९२५

❀

कठिन समस्या

आन्ध्रके एक पत्रलेखक अपनी मुश्किलोंकी ओर इस प्रकार ध्यान खींचते हैं:—

"गत सप्ताहके 'यंग इन्डिया'में एक बंगाली सज्जनके अस्पृश्यता विषयक पत्रके जवाबमें आपने कहा है, जब कि शूद्रोंके हाथका पानी हम पीते हैं तब अस्पृश्योंके हाथका पानी पीनेसे हमें तनिक झिझकना नहीं चाहिये। 'हम' से मतलब है उच्च वर्ण वाले हिन्दुओंसे। मैं उत्तर हिन्दुस्तानमें प्रचलित रिवाजोंको नहीं जानता। लेकिन क्या आप यह जानते हैं कि आंध्र देशमें और हिन्दुस्तानके इससे भी अधिक दक्षिणके दूसरे विभागोंमें केवल यही नहीं कि ब्राह्मण लोग अब्राह्मणों (दूसरे तीन वर्णों) के हाथका पानी ही नहीं पीते बल्कि जो लोग कट्टर सनातनी हैं वे तो उन्हें सर्वथा अस्पृश्य भी मानते हैं और उनके साथ सदा वैसा ही व्यवहार रखते हैं।

आपने अक्सर यह बात कही है कि आप जातिगत उच्च भावको दूर करनेके लिये रोटी-व्यवहार रखनेकी आवश्यकताका प्रचार करना नहीं चाहते हैं।' एक मर्तबा आपने इस बातको साबित करनेके लिये मालवीयजीका उदाहरण भी पेश किया था और कहा था कि आपसे परस्पर आदर और सद्भाव होनेपर भी यदि मालवीयजी आपके हाथका

पानी पीने या दूसरी चीज खानेसे इन्कार करदे तो आपके ख्यालसे यह आपका तिरस्कार न होगा। मैं इसको मान लेता हूँ। लेकिन आप नहीं जानते कि इस प्रांतके ब्राह्मण १०० गजके फासलेसे भी यदि कोई अब्राह्मण उनका खाना देखले तो उसे न खायेंगे। खाना छूनेकी बात तो दूर रही, क्या मैं आपको यह बताऊँ कि रास्तेमें कोई शूद्र एक या दो लफ्ज़ बोल दें तो उतनेसे ही भोजन करते हुए ब्राह्मणको गुस्सा आ जायगा और फिर वह दिन भर न खायगा। यदि यह तिरस्कार नहीं तो फिर क्या हो सकता है? क्या यह ब्राह्मणोंकी अकड़ नहीं है? क्या आप इस बातपर प्रकाश डालेंगे? मैं स्वयं एक ब्राह्मण युवक हूँ और इसी लिये अपने अनुभवसे ही ये बातें लिख रहा हूँ।"

अस्पृश्यता बहुमुखी राक्षस है। यह धर्म और नीतिकी दृष्टिसे बड़ा ही गम्भीर प्रश्न है। मेरी दृष्टिमें रोटी व्यवहार एक सामाजिक प्रश्न है। वर्तमान अस्पृश्यताकी ओटमें मनुष्य जातिके एक अंशके प्रति तिरस्कार-भाव छिपा हुआ है समाजके मर्म-स्थलोंमें एक प्रकारका घुन लगा हुआ है, मनुष्यत्वके हकोंका यह इन्कार है। रोटी-व्यवहार और अस्पृश्यता समान नहीं हो सकते। समाज-सुधारकोंसे मेरी प्रार्थना है कि वे इन दोनोंको एक न कर दें। यदि वे ऐसा करेंगे तो वे अस्पृश्यों और दूरितोंके हितको हानि पहुचावेंगे। इस ब्राह्मण पत्र लेखककी कठिनाई सच्ची कठिनाई है। इससे प्रतीत होता है कि यह बुराई कितनी गहरी पैठ गई है। ब्राह्मण शब्द तो नम्रता, अपने आपको भूल जाना, त्याग, पवित्रता, हिम्मत, क्षमा और सत्य ज्ञानका पर्यायवाची होना चाहिये। लेकिन आज तो यह पवित्र भूमि ब्राह्मण और अब्राह्मणके विभागोंसे दुःखी हो रही है। बहुतेरी बातोंमें ब्राह्मणोंने अपनी महत्ताको नष्टकर दिया है। उन्होंने अपनी ऐसी महत्ताका दावा कभी नहीं किया था। लेकिन निःसंशय उनकी सेवाके कारण उसका सेहरा उन्हींके सिर बंधा था। ब्राह्मण लोग जिसका आज दावा नहीं कर सकते हैं उसीको प्राप्त करनेके लिये बड़ा प्रयत्न कर रहे हैं और इससे हिन्दुस्तानके कुछ हिस्सोंमें अब्राह्मण लोगोंको उनके प्रति ईर्ष्या हुई है। हिन्दू धर्म और देशके सद्भाग्य से पत्र-लेखक जैसे ब्राह्मण भी मौजूद हैं जो इस बुरी प्रवृत्तिके खिलाफ अपनी पूरी ताकतके साथ लड़ रहे हैं और जो अब्राह्मणोंकी त्याग भावसे बराबर सेवा कर रहे हैं। यह उनके उच्च भूतकालके अनुकूल है। जहाँ कहीं देखो अस्पृश्यताके खिलाफ आज ब्राह्मण लोग आगे आकर लड़ रहे हैं और अपने पक्षका समर्थन करनेके लिये वे शास्त्रोंका आधार भी पेश कर रहे हैं। पत्र-लेखकने दक्षिणके जिन ब्राह्मणोंका वर्णन किया है उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे समयके प्रवाहको देखें ऊँच-नीचके गलत ख्यालको छोड़ दें और वे इस वहमको भी छोड़ दें, जिससे कि उन्हें अब्राह्मणको देखकर पापकी गन्ध आती है। और उनकी आवाज सुनकर उनका खाना अपवित्र हो जाता है। ब्राह्मणोंने ही ब्रह्मको सर्वत्र देखनेकी शिक्षा संसारको दी है। बेशक तब फिर अपवित्रता कहीं बाहरसे नहीं आ सकती। वह अन्दर ही होती है।

आज ब्राह्मण यह सन्देश फिर सुनावें कि अछूतपनका ख्याल बुरा ख्याल है। उसने संसारको यह शिक्षा दी है। "आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मन." मनुष्य स्वयं ही अपना उद्धारक है और अपना शत्रु और नाशक भी है।

इस आन्ध्र-पत्र-लेखककी बातोंसे ब्राह्मणोंको क्षुब्ध होना चाहिये। इस पत्रलेखक जैसे कितने ही ब्राह्मण उनकी तरफसे अस्पृश्यताके खिलाफ उसी तरहसे लड़ेंगे जिस तरह वे खुद लड़ रहे हैं। कुछ थोड़े लोगोंके पापोंके कारण ब्राह्मणों-की सारी जातिको ही धिक्कारना न चाहिये। मुझे डर है कि यह प्रवृत्ति बढ़ रही है। व इतने उदार बनें कि जो लोग इनके प्रति बुरा व्यवहार करते हैं उनसे अच्छे व्यवहारकी आशा न करें। कोई राहगीर यदि मेरी तरफ दृष्टि न करे, यदि वह मेरे स्पर्शसे, मेरी उपस्थितिसे या मेरी आवाजसे नापाक हो जाय तो उससे मैं अपना अपमान न समझूँगा। इतना ही काफी है कि उसके कहनेसे मैं अपने रास्तेसे न हटूँगा या वह सुन लेगा इस डरसे बोलना बन्द न करूंगा। जो अपनेको उच्च मानता है उसके अज्ञान और वहमपर मुझे दया आसकती है लेकिन मैं उसपर क्रोध और उसका तिरस्कार नहीं कर सकता। क्योंकि यदि मेरा तिरस्कार किया जावेगा तो मुझे बुरा मालूम होगा। संयम खो देनेसे तो अब्राह्मण लोग अपना मुद्दा ही खो बैठेंगे। सबसे महत्वकी बात तो यह है कि सीमासे अधिक आगे बढ़कर व ब्राह्मण योद्धाओंको दिक्कतमें न डाल दें। ब्राह्मण तो हिन्दू धर्म और मनुष्य समाज-का उत्तम पुष्प अंग है। ऐसा एक भी काम मैं न करूंगा जिससे उसे मुरझाना पड़े। मैं यह जानता हूँ कि वह अपनी रक्षा करनेके लिये समर्थ है। उसने अबतक बहुतसे तूफानोंको देख लिया है। लेकिन अब्राह्मणोंके बारेमें यह न कहना चाहिये कि उन्होंने इस पुष्पकी सुगन्ध और कान्तिको लूट लेनेका प्रयत्न किया है। मैं नहीं चाहता कि ब्राह्मणोंके सर्वनाशपर अब्राह्मण लोग उन्नति करें। मैं तो यह चाहता हूँ कि वे उस उच्च स्थानको पहुंच जाँय जिसपर अबतक ब्राह्मण लोग पहुँचे हुये थे। ब्राह्मण जन्मसे होते हैं लेकिन ब्राह्मणत्व जन्मसे नहीं होता। यह तो वह गुण है जिसको कि छोटेसे छोटा आदमी भी अपना विकास करके प्राप्त कर सकता है।

हिन्दी-नवजीवन
१९ मार्च १९२५

❋

अन्त्यजोंकी नासमझी

जिस प्रकार सौराष्ट्रमें अन्त्यजोंके प्रति निर्दयताका मुझे विशेष अनुभव हुआ उसी प्रकार अन्त्यजोंकी ना-समझीका भी खासा अनुभव हुआ। ढसा, हडाला और मांगरोलके अन्त्यजोंके साथ बातचीत करनेसे मालूम हुआ कि वे मरे हुये ढोरोंका मांस खाते हैं। इस मांसको वे धूलके नामसे पुकारते हैं। इस बुरी आदत को छोड़ देनेके लिये मैंने उन्हें बहुत समझाया लेकिन उन्होंने जवाब दिया कि बहुत दिनोंसे यह रिवाज चला आ रहा है और इसलिये यह रिवाज छूट नहीं सकता। उन्हें बहुत समझाया लेकिन वे एकके दो नहीं हुए। यह तो स्वीकार कर लिया कि हमें इसे छोड़ देना चाहिये। लेकिन छोड़नेकी ताकत नहीं है यह कहकर वे स्थिर हो रहे। हिन्दू समाजको बहुत समझानेपर भी मुर्दार मांस खानेवालों के प्रति उनकी घृणा निकालना बहुत ही मुश्किल होगा। शायद उनकी इस बुरी आदतको वे सहन कर लेंगे लेकिन प्रेमसे वे उन्हें गले न लगायेंगे। कैसी भी विपत्ति क्यों न हो, अन्त्यजोंको यह बुरी आदत छोड़नेके लिये प्रयत्न करना आवश्यक है। उन्हें और उनके साधुओंको चाहिये कि एक बड़ी हलचल करके भी इस बहुत ही गन्दी आदतको दूर कर दें। एक अन्त्यजने अपनी कमजोरीका बयान करते हुये सचाईके साथ कहा 'यदि हमको मरे हुए ढोर उठानेको ही न कहा जाय तो हम उसे खाना छोड़ दें।' मैंने कहा 'दरबार साहब यदि ऐसा कायदा बनावें कि कोई चमार मरे हुए ढोरोंको न उठावें तो क्या तुमको यह स्वीकार है ?

"हम लोगोंको यह स्वीकार है।"

"तो फिर आजीविका कहाँ से प्राप्त करोगे ?"

"कुछ भी करेंगे, बुनाई करेंगे लेकिन आपके पास कोई शिकायत न करेंगे।"

मैं जो समझता था कि चमारके धन्धेका अभ्यास करना चाहिये और उसमें जो बुराइयाँ हैं उन्हें दूर करना चाहिये उससे अधिक इस सवाल-जवाबसे मैं कुछ न समझ सका।

अन्त्यजोंमें दूसरी बुराई यह है कि ढेड़ चमारको नहीं छूता और चमार भंगीको नहीं छूता है। इस प्रकार अस्पृश्यताने उनमें भी प्रवेश किया है। इसका अर्थ तो यह होगा कि चमार, ढेड़, भंगी इत्यादिके लिये अलग-अलग कुएँ, अलग-अलग शालाएँ बनानी होंगी। छः करोड़ माने जानेवाले अन्त्यजोंके

विभागोंको सन्तुष्ट रखना बड़ा मुश्किल होगा। इसका तो केवल यही उपाय है कि उनमें जो सबसे हल्की कौम गिनी जाती है उसीके लिये या उसकी सुविधा जहाँ हो सकती है वहीं कार्य करना चाहिये। इससे और सब बातें अपने आप साफ हो जायँगी।

इन दोषोंके उच्च वर्णके माने जानेवाले हिन्दू लोग ही जिम्मेवार हैं। उन्होंने अन्त्यजोंका सर्वथा त्याग किया था और आगे बढ़नेके संयोगके अभावमें बहुत ही गिर गये। उन्हें सहारा देकर खड़ा करनेमें ही हमारी उन्नति होगी। खुद नीचे उतरे बिना मैं किसीको नहीं उठा सकता। उन्हें चढ़ानेसे हिन्दू-जाति ऊपर चढ़ेगी।

हिन्दी-नवजीवन
२३ अप्रैल १९२५



अछूतोंके संबंधमें

उस दिन कलकत्तेमें आन्ध्र देशके श्री टी० एन० शर्मा मिले और उन लोगोंकी राहकी कठिनाइयोंकी निस्बत पूछा जो कि पंचम लोगोंकी सेवा कर रहे हैं। उन्होंने उस बातचीतको लिखकर मेरे देखनेके लिये और यदि मुमकिन हो तो छापनेके लिये भेजा है। उससे कार्यकर्त्ताओंको सहायता मिलनेकी संभावना है। इसलिये मैं उनके सवालोंको और अपने जवाबोंको यहाँ देता हूँ।—

(१) अछूतपन दूर करनेके लिये आप किस तरहका प्रचार-कार्य करनेकी राय देते हैं ?

अब बहुत जबानी प्रचार करनेकी जरूरत नहीं है। कामको ही प्रचार समझना चाहिये। आपको सामाजिक दिक्कतोंकी परवा न करते हुए बेखटके अछूतोंकी हालत सुधारनेका अपना काम करना चाहिये। जब कोई बड़े लोग आवें यो उनके व्याख्यानोंकी तजवीज करनी चाहिये।

(२) हमारे प्रान्तमें इस विषयपर दो रायें हैं और इस आशयका एक प्रस्ताव भी पास हो चुका है कि अ-पंचम लोगोंमें प्रचार-काम करनेके लिये रुपया खर्च न करना चाहिये। कुछ लोगोंका विचार है कि पहले पंचम लोगोंको पढ़ा-लिखा देना चाहिये और उनकी तरफसे अछूतपन दूर करनेकी मांग पेश होनी चाहिये; पर कुछ लोगोंकी राय है कि उच्च-वर्ण हिन्दुओंमें उपदेशकोंके द्वारा प्रचार करना चाहिये। जिससे उनके

हृदयका पलटा हो और वे समझने लगें कि अछूतपन एक पाप है और वैतनिक पंडितों और दूसरे उपदेशकोंको इस काम में नियुक्त करना चाहिये ।

मैं पंडितोंपर एक पैसा भी खर्च न करूँगा । यदि आप उन्हें द्रव्य देंगे तो वे भड़ैत हो जायँगे । वे वेतनके लिये काम करेंगे । हाँ पंचमोंको अपनी स्थितिका ज्ञान करानेके लिये रुपया अलबत्ते खर्च होना चाहिये । हमारे साधन हमेशा शान्तिमय हों । उच्च वर्ण कहलानेवाले हिन्दुओंको अपने भाव बदल देने चाहिये और अपनी ही उच्चता और शुद्धिके लिये उन्हें यह कलंक धो डालना चाहिये । यदि वे ऐसा न करेंगे और उन्हें दबानेपर तुले रहेंगे, तो ऐसा समय आये बिना न रहेगा जब कि खुद अछूत लोग ही हमारे खिलाफ बगावतका झण्डा ऊँचा करेंगे और संभव है कि वे हिंसा कांडका भी आश्रय ले लें ।

मैं अपनी तरफसे ऐसे किसी महा संकटको रोकनेका प्रयत्न अपनी पूरी शक्तिके साथ कर रहा हूँ । और उन सब लोगोंको भी ऐसा ही करना चाहिये जो कि अछूतपनको पाप मानते हों ।

(३) क्या आप यह मानते हैं कि पंचम लोगोंके लिये जो अलहदा स्कूल खोले जाते हैं उससे अछूतपनके दूर होनेमें किसी तरह सहायता मिल सकती है ?

आगे चलकर अवश्य ही सहायता मिलेगी, जैसी कि हर प्रकारकी शिक्षासे मिलती है । परन्तु ऐसे मदरसे अकेले अछूतोंके लिये ही नहीं होना चाहिये और जातियोंके लड़के भी उनमें लेने चाहिये । फिलहाल वे न आवेंगे परन्तु समय पाकर उनका दुर्भाव कम हो जायगा, यदि शालाकी व्यवस्था अच्छी रही । यदि आप मिश्र शालाएँ चाहते हों तो आपको अपने मुहल्लेमें ऐसी एक पाठशाला खोलनी चाहिये । मान लीजिये कि आपका एक घर है । आपसे कोई यह न कहेगा कि अपने घरसे चले जाइये । एक अछूत लड़केको अपने घरमें ले आइये और पाठशाला शुरू कर दीजिये । और लड़कोंको भी समझाकर लाइये ।

(४) हमारे प्रान्तमें उन शालाओंको प्रोत्साहन दिया जाता है जिनमें अछूतोंके तथा दूसरे लोगोंके लड़के एक साथ पढ़ते हैं ।

हाँ, आप उनको प्रोत्साहन दे सकते हैं । परन्तु आपको उन मदरसों या संस्थाओंकी मदद करनेसे बाज न आना चाहिये जिनमें अकेले अछूतोंके लड़के हों ।

(५) कुछ तालुक बोर्डोंमें ऐसे हुकुम इजरा हुए हैं कि वे शालाएँ तोड़ दी जाँयगी जो अछूतोंके लड़कोंको लेनेसे इन्कार करती हैं । क्या हमको अपने प्रचारकों द्वारा उन स्कूलोंमें पंचम लोगोंको भरती करानेमें सहायता देनी चाहिये ।

अवश्य । आपको उन्हें सहायता करनी चाहिये । पर खास तौर पर प्रचारक रखने की जरूरत नहीं है । आपके कार्यकर्त्ता ही उसके लिये काफी होंगे ।

(६) तो अब प्रचार-कामके बारेमें आप क्या कहते हैं ? क्या आप समझते हैं कि चुपचाप काम करना भर बस है ?

हाँ, जब कि पंचम लोगोंकी हालतको ऊँचा उठानेके लिये कोई ठोस काम नहीं हो तो जबानी प्रचारसे लाभ न होगा।

(७) तो फिर जब ऐसे प्रश्न पैदा हों तब क्या हम जी खोलकर प्रचारके लिये रुपया खर्च करें ?

नहीं, जी खोलकर नहीं। ठोस काम खुद ही अपना प्रचार कर लेता है वायकोममें अधिकांश द्रव्य रचनात्मक कार्योंमें खर्च किया गया है।

(८) क्या आप निकट भविष्यमें अछूतपनके प्रश्नमें और भी जोर-शोर-के साथ भिड़ जानेका विचार रखते हैं ?

मैंने तो पहले ही उसे भरसक जोर-शोरके साथ उठा लिया है। हम जहाँ कहीं संभव हो, पाठशालाएँ खोलने कुवें खोदवाने और मन्दिर बनवाने आदि की चेष्टा कर रहे हैं। काम रुपयेके अभावमें रुकता नहीं है। पर शायद आप इसलिये कि पत्रोंमें उसकी शोहरत नहीं होती, समझते हैं कि कुछ भी काम नहीं हो रहा है।

(९) बेलगाँव प्रस्तावके अनुसार तो कोई भी स्कूल राष्ट्रीय नहीं हो सकता जिनमें पंचम लड़के न लिये जांय ?

बेशक, वे राष्ट्रीय स्कूल हई नहीं।

(१०) क्या आपकी यह राय है कि ऐसे स्कूल यदि और सब शर्तोंका पालन करते हों, पर इसे न कर पाते हों तो क्या उन्हें महासभासे सहायता न मिलनी चाहिये ?

ना, कोई सहायता न मिलनी चाहिये।

हिन्दी-नवजीवन
१० सितंबर १९२५

❀

अछूतपन और सरकार

एक महाशय लिखते हैं:—

"२७–८–२५ के 'यंग इंडिया' में आप फरमाते हैं कि मैं एक भी ऐसी मिसालको नहीं जानता कि जिसमें सरकारने लोगोंके अछूतपन दूर करनेके कार्यमें रुकावट डाली हो। यह तो अच्छी नीति है कि हम बुरेके साथ भी न्यायका बर्ताव करें। पर हमें सावधानी रखनी चाहिये कि कहीं न्यायके पक्षमें हम भूल न कर बैठें। मुझे कहना पड़ता है कि आपने यह बात असावधानीके क्षणमें लिख डाली है—बड़ी हिचकिचाहटके बाद मैं इस विचारको अपने हृदयमें स्थान दे रहा हूँ। आपने सरकारको इस अस्पृश्यता निवारण आन्दोलनमें किसीका पक्ष लेते हुए न देखा हो, परन्तु मैं तथा इस आन्दोलनसे संबंध रखनेवाले दूसरे लोग इस बातको जानते हैं और जानते हैं, अपनी बहुत हानि करके कि सरकार यदि सचमुच इस सुधारमें बाधा नहीं डाल रही है तो वह उसे दूसरा रूप देनेकी कोशिश निःसन्देह कर रही है। आप जानते हैं कि जब श्रीमान् युवराजका आगमन यहाँ हुआ तब एक अछूत मेरठ से अछूतोंकी एक टोली लाया और दलित जातियोंकी तरफसे युवराजको अभिनन्दन-पत्र दिया गया। जिस परिस्थितिमें मान-पत्र दिया गया, जिस ढंगसे अछूतोंको मिलाया गया और जिस ढंगके लोग राष्ट्रमतके खिलाफ इस काममें लगाये गये उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सरकारके सिवा और किसीका छिपा हाथ उसमें न था। और सत्ताधारी इतनाही करके नहीं रहे, आगे जो कुछ हुआ उससे यह मालूम होता है कि वह एक सोची समझी नीतिका श्रीगणेश-मात्र था। शायद आपको पता न हो कि मैनपुरी, इटावा, एटा और कानपुर के जिलोंमें भी एक नई हलचल शुरू हुई है। इसमें उसी मनोभावका स्मरण हो आता है जो युवराजके आगमनके समय दलित जातियोंके कुछ लोगोंमें पाया गया था। उसका नाम रक्खा गया है आदि हिन्दू-अन्दोलन। इस आन्दोलनके नेताने कितने ही पर्चे और विज्ञप्तियाँ प्रकाशित की हैं और दलित जातियोंमें बाटा है। वह उच्चवर्णके हिन्दुओंका तीव्र विरोधी है और उन्हें वह "विजयी" लोगोंकी श्रेणीमें रखकर उन्हें दलित लोगोंकी वर्तमान दुरवस्थाका जिम्मेवार बताता है। उसने आर्योंके इस देशमें तलवार और बन्दूक लेकर आने तथा आदि-निवासियोंके गुलाम बनाकर छोड़नेके सिद्धान्तको पकड़ लिया है। वह अछूतोंके हृदयों तक पहुँचता है जिन्हें कि वह यहाँका असली बाशिन्दा मानता है और उन्हें उच्च वर्णके हिन्दुओंके खिलाफ उठ खड़े होने को उभाड़ता है। जुदे प्रतिनिधित्वका मता खड़ा किया जाता है, नौकरियोंमें अच्छी तादाद देनेकी मांग भी की जाती है। वह उनके दिलमें यह बात जँचाना चाहता है कि यदि मंगलमय बृटिश–राज न होता तो ये उच्च हिन्दू अछूतों को बेहाल कर देते। इस हलचलकी मददपर सत्ताधारी लोग हैं—इसे एक प्रकट रहस्य ही समझिये। सामाजिक कार्यके इस क्षेत्रमें भी भेदनीतिका श्रीगणेश हुआ सा दिखाई देता है। तब यह कैसे कहा जा सकता है कि सरकार इस झगड़ेके मूलमें नहीं है। वह

अपनी छुआछूतको चिरजीवी बनाने के लिये एक और निमित्त पैदा करने की कोशिश नहीं कर रही है ? सरकार चाहे समाज-सुधारकके मार्गमें रोड़े न अटकाती हो, पर वह हमारी सामाजिक उलझनोंसे उत्पन्न स्थितिसे क्यों न लाभ उठावे? क्या यह मनोभाव मनुष्यके लिये स्वाभाविक नहीं है ?"

इसमें स्पष्टतः विचार-दोष है। युवराजके आगमनके समय अछूतोंके उन्हें मान-पत्र देने की कथा मुझे मालूम है और यद्यपि मैं लेखक लिखित आन्दोलनमें सरकारके पृष्ठपोषक होने की बातसे परिचित नहीं हूँ तथापि मुझे बिल्कुल ताज्जुब न होगा यदि यह इल्जाम अच्छा साधार हो। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सरकारका झुकाव हममें भेद डालने की ओर है। उसकी शक्ति हमारी फूटमें ही है। हमारी एकता उसे चूर-चूर कर देगी। पर यह नीति इस बातका प्रमाण नहीं है कि सरकार हमारे अछूत-सुधारके काममें दखल दे रही है। जैसे सरकार खुले-आम या दबे-छिपे अछूत-पन दूर करने, अछूतोंके लिये मदरसे खुलवाने और कुएँ खुदवाने या हमारे कुओंसे उन्हें पानी लेने देने के कार्योंमें बाधा नहीं डाल रही है। अछूतोंका उपयोग किया जाना एक बात है और हिन्दुओंके द्वारा उनका सुधार होना दूसरी बात है। यदि हम हठपूर्वक अपने कर्तव्यका पालन करने और हिन्दू धर्मसे इस पापको धो बहानेसे मुँह मोड़ेंगे तो उनका ऐसा उपयोग निश्चित रूपसे होता रहेगा। और हम इस तरह सरकारके मत्थे दोष मढ़ते रहेंगे और स्वराज्य प्राप्त होने तक अछूतपनको मिटानेकी राह देखते रहेंगे तो इस दिशामें हम अपनी पूरी शक्तिके साथ उद्योग न कर पावेंगे।

हिन्दी-नवजीवन
२४ सितंबर १९२५



ऊँचनीचका ख्याल

मैमनसिंहकी जिला वैश्य-सभाकी तरफसे मुझे नीचे लिखा पत्र दिया गया था—

(१) हमारी समितिका उद्देश्य एकता करना और हमारी जातिका पुनरुद्धार करना है।

(२) जैसा हम समझते हैं आपका कार्य तीन प्रकारका है।

(क) चरखा और खादीका प्रचार

(ख) हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य

(ग) अस्पृश्यताका त्याग

पहले दो कार्य सर्वमान्य हैं। हमलोग केवल तीसरे कार्यके संबंधमें ही आपके पास आये हैं और यह दिखाना चाहते हैं कि बंगालके हिन्दुओंको एक करनेके कार्यमें अस्पृश्यताकी भावना किस प्रकार बाधा पहुँचाती है।

बंगालके हिन्दुओंके मुख्य दो विभाग किये जा सकते हैं। (१) वे जिनके हाथका जल ग्रहण किया जाता है। (२) वे जिनके हाथका जल ग्रहण नहीं किया जाता। पहले विभागमें ब्राह्मण, वैद्य, कायस्थ और नवशाखवाले हैं और दूसरे विभागमें वैश्यशहा, सुवर्णवणिक (सुनार), सूत्रधार (बढ़ई), जोगी (रणकर), सुन्डी (कलाल), मच्छीमार, भोई, धोपा (धोबी) चमार, कापालिक नामशूद्र इत्यादि हैं। इसमेंसे कितनों ही को तो मर्दुमशुमारीमें दलित वर्गोंमें गिना गया है।

प्रथम विभागकी तीन कौमें हिन्दूजातिकी मालिक बन बैठी हैं और वे दूसरी जातियोंका केवल तिरस्कार ही नहीं करती हैं लेकिन उन्हें अनेक प्रकारसे हैरान भी करती हैं। उन्हें देव-मन्दिरोंमें जानेकी मुमानियत है। इस वर्गके विद्यार्थियोंको बोर्डिंगमें रहनेकी और खाने-पीनेकी बहुत कुछ असुविधायें होती हैं। होटलोंमें, हलवाइओंकी दुकानोंमें उन्हें दुत्कारा जाता है।

बंगालके अस्पृश्यता-निवारक कार्यकर्त्ता, योग्य कार्य-पद्धति न होनेके कारण कुछ भी प्रगति नहीं कर सकते हैं। १९२१ की मर्दुम शुमारीमें बंगालमें हिन्दुओंकी कुल संख्या २...... ४०,००० से भी अधिक थी। उनमें से १७ प्रति सैकड़ा ब्राह्मण, १६ प्रति सैकड़ा कायस्थ और १६ प्रति सैकड़ा वैद्य मिलकर उनकी कुल संख्या ९८ लाख ९ हजार होती है।

पूर्व बंगाल और सिलहटकी अकेली वैश्यशहा कौम ही जो व्यापारमें सबसे बढ़ी हुई है २, ९०, ००० अर्थात् हिन्दुओंकी संख्याके प्रमाणमें ३॥ प्रति सैकड़ा है। उनमें हजारमें ३४२ लोग पढ़ना लिखना जानते हैं और वैद्योंमें ६६२, ब्राह्मणोंमें ४८४, कायस्थोंमें ४१३, सुवर्ण वणिकोंमें ३८३, और गन्धर्ववणिकोंमें प्रति हजार ३४४ मनुष्य पढ़ना लिखना जानते हैं। दूसरे आचरणीय वर्णोंमें पढ़ना लिखना जानने वालों की संख्याका प्रमाण बहुत ही कम है। फिर अनाचरणीय वर्णोंके बारेमें क्या कहा जा सकता है?

हमारी कौमकी तरफसे कालिज, हाईस्कूल, अस्पताल, तालाब, पक्के कुएँ इत्यादि अनेक संस्थाएँ चलाई जाती हैं और सखावतमें भी वह किसीसे कम नहीं हैं। आचार-विचार और अतिथिका सत्कार करनेमें भी वह किसीसे कम नहीं। स्त्री-शिक्षाके संबन्धमें भी वह कम नहीं हैं। फिर भी हम लोग हिन्दू समाजकी कक्षाके बाहर माने जाते हैं। हमारी कौम किसी भी राष्ट्रीय प्रवृत्तिमें कभी भी पीछे नहीं रही है। फिर भी हमारे योग्य दरजेको स्वीकार करनेका विचार भी हिन्दू समाजको कभी नहीं हुआ है। हमारे मार्गमें सामाजिक रुकावटें न हों तो हम आजके बनिस्बत कितने अधिक उपयोगी बन सकते हैं?

सुन्डियों (कलालों) से हम लोग बिलकुल ही जुदा है। लेकिन वे भी अपनेको 'शहा' कहते है इसलिये संकुचित विचारके हिन्दू हमें भी उन्हींके साथ रख देते है। हमने तो पूरी शोध करके इस बातको साबित कर दिया है कि हमारी कौम उत्तर और पश्चिम हिन्दुस्तानकी तरफसे आई है और ब्राह्मण धर्मका फिरसे जब अधिक ोर हुआ उस समय हम लोग बौद्ध धर्मके असरको सम्पूर्ण दूर न कर सके इसलिये हिन्दूधर्ममें हमें योग्य स्थान न मिला और तिरस्कृत बन रहे है।"

इन बातोंमें संभव है कुछ अतिशयोक्ति हो लेकिन ऊंच-नीचके भेद-का कीड़ा हिन्दू-धर्मके मर्मको ही खा रहा है। यह दिखानेके लिये ही मने यह पत्र यहाँ दिया है। जिन्होंने बातें लिख भेजी हैं, उनका वे लोग जो उनसे ऊँचे गिने जाते हैं तिरस्कार करते हैं और वे उनसे भी अधिक जो तिरस्कृत हैं उनसे अपनेको ऊँचे और अलग मानते हैं। इस प्रकार तिरस्कृत "अस्पृश्यों" में भी ऊँच-नीचका भाव व्याप्त हो रहा है। कच्छकी यात्रामें मैंने देखा है कि हिन्दुस्तानके दूसरे भागोंकी तरह कच्छमें भी अस्पृश्योंमें ऊँच-नीच-का भेद है और ऊँची जातिका अन्त्यज नीची जातिके अन्त्यजको छूनेसे इन्कार करता है। इतना ही नहीं, नीची जातिके बालक जिस शालामें पढ़ने को जाते हैं उस शालामें अपने लड़केको भेजनेसे भी साफ इन्कार कर देता है। जब ऐसी स्थिति है तो उनके दरम्यान रोटी-बेटीके व्यवहारकी बात ही कैसे हो सकती है? वर्ण भेदका जो भयंकर अनर्थ हुआ उसका यह उदाहरण है। और, एक वर्ग अपने-को दूसरे वर्गसे ऊँचा मानकर जो अभिमान करता है उस अभिमानका विरोध करनेके लिये ही मैं अपनेको भंगी कहलानेमें आनन्द मानता हूँ। क्योंकि मेरे ख्यालसे कोई भी जाति ऐसी नहीं है जो भंगीसे भी नीची हो। समाजमें भंगी ही बेचारा कोढ़ी है। उसे सब दुत्कारते हैं और फिर भी समाजके स्वास्थ्यके लिये अर्थात् समाजको जीवित रखनेके लिये किसी दूसरे वर्गके बनिस्बत भंगीका वर्ग ही अधिक उपयोगी और आवश्यक है। जिन्होंने यह पत्र लिखा है उनके प्रति मेरी पूर्ण सहानुभूति है। लेकिन जिनके भाग्यमें उनसे भी नीचा गिना जाना लिखा है उन्हें वे अपनेसे नीचा न समझें। ऐसे लोगोंको अपने वर्गमें मिलाकर दूसरोंको जो लाभ नहीं मिलता है, उस लाभको लेनेसे उन्हें भी साफ इन्कार कर देना चाहिये। हिन्दू धर्ममेंसे सामाजिक असमानताके कलंकको दूर करना हो तो निर्मल करनेके लिये हममेंसे कितनों ही को खूनपानी एक करना होगा। मेरे ख्याल से तो वे जो ऊँचा होनेका दावा करते हैं, अपने इसी दावेके कारण उसके लिये नालायक साबित होते हैं। सच्ची और स्वाभाविक बड़ाई तो बिना दावेके ही मिल जाती है। जो सचमुच बड़ा है उसके कहे बिना ही उसको सब लोग बड़ा कहते हैं और वह अपनी बड़ाईका इन्कार करता है। केवल आडम्बरसे या झूठी नम्रता दिखानेके लिये नहीं लेकिन इस शुद्ध ज्ञानके कारण कि जो अपनेको नीचा मानता

है उसकी आत्मा और अपनी आत्मामें कोई भेद नहीं है। सृष्टिके सभी प्राणियों-की एकता और अभेदके ज्ञानमें ऊँच-नीचके भावको कहीं अवकाश ही नहीं होता है। जीवन तो कार्यक्षेत्र है, अधिकार और हकोंका संग्रह नहीं है। जो धर्म ऊँच-नीच-के भेदोंकी प्रथापर आधार रखता है उसका सर्वथा नाश ही होगा। वर्ण धर्म-का मेरा अर्थ यह नहीं है। मैं वर्ण धर्मको मानता हूँ क्योंकि मेरा यह ख्याल है कि वह जुदा-जुदा धन्धेके मनुष्योंके कर्तव्योंको निश्चित करता है। इस धर्मके अनुसार वही ब्राह्मण है जो सभी वर्णोंका सेवक है। शूद्रोंका और अस्पृश्योंका भी सेवक है। चारों वर्णोंकी सेवा करने के लिये वह अपना सब कुछ अर्पण कर देता है और प्राणीमात्रकी दयापर ही अपनी जीविकाका आधार रखता है। अधिकार, सम्मान और अपने हकोंका दावा करनेवाला क्षत्रिय नहीं है। क्षत्रिय तो वही है जो समाजका रक्षण करने के लिये, उसकी प्रतिष्ठाके लिये स्वार्पण कर देता है। अपने ही लिये कमानेवाला और संग्रह करनेवाला वैश्य नहीं है लेकिन चोर है। हिन्दू धर्मकी मेरी कल्पनाके अनुसार पाँचवा अर्थात् अस्पृश्योंका वर्ण है ही नहीं। जिन्हें अस्पृश्य कहते हैं वे दूसरे शूद्रोंके समान ही अधिकार रखनेवाले समाज-सेवक है। मैं यह मानता हूँ कि समाजका परम श्रेय करने के लिये सोची गई उत्तमोत्तम प्रथा वर्ण धर्मकी प्रथा है। आज तो केवल उसकी विडम्बना हो रही है। यदि वर्णधर्मकी रक्षा करनी है तो वर्णधर्मके इस उपहास योग्य ढांचे-का नाश करके वर्ण-धर्मके प्रचीन गौरवका पुनरुद्धार करना होगा।

हिन्दी-नवजीवन
१२ नवंम्बर १९२५

ॐ

अन्त्यज प्रश्न

अन्त्यज प्रश्नके संबन्धमें कच्छमें जो कठिनाइयाँ उपस्थित हुई थीं, वैसी कठिनाइयोंका अनुभव मुझे और कहीं नहीं हुआ था। कच्छके अन्त्यजोंमें जागृतिका होना भी इसका एक कारण है। प्रत्येक स्थानकी सभामें उनके झुंडके झुंड आते थे, उन्हें स्वयंसेवकोंने उत्साहित भी किया था। लेकिन दूसरी तरफसे स्वागत समितिने सबको राजी करनेकी नीति ग्रहण की थी। इसलिए सब जगह एक ऐसा पक्ष खड़ा हो गया था कि जो अन्त्यजोंके साथ बैठनेमें विरोध करता था। मैंने भूजमें प्रथम यह विरोध देखा। लेकिन मैंने यह मान लिया कि वहाँ इसका निबटारा अच्छी तरहसे हो गया था। किन्तु मैंने देखा कि आखिर उसका अनर्थ किया गया। भूजमें जो बात शोभास्पद मालूम हुई थी वही और दूसरी जगहोंपर अविवेकयुक्त और निर्दय प्रतीत हुई। सभी जगहोंपर दो विभाग से हो गये थे और आखिर स्वागत समिति भी ऐसी ही बन गयी थी कि मानों वह अस्पृश्यताको धर्म मानती थी। हर-एक जगहके अनुभव विचित्र करुणामय और हास्यमय थे। हास्यमय इसलिए थे, क्योंकि किसीने भी जान बूझकर अविवेक नहीं किया था। कुछ तो मेरे व्याख्यानोंका अनर्थ हुआ था और कुछ जगहमें तो निर्दोष बुद्धिसे ही बड़ा अविवेक दिखाया गया था।

यदि इसपरसे कोई यह मान ले कि कच्छमें अस्पृश्यताका बहुत जोर है तो यह गलत होगा। यदि स्वागत समितिके प्रधान-प्रधान व्यक्तियोंने कमजोरी न दिखायी होती और भूजमें मैंने जो कार्य किया था उसका दूसरे स्थानोंमें अनर्थ न होता तो कच्छके लोगोंकी ऐसी हँसी कभी भी न होती। कच्छमें तो शहरमें भी अन्त्यजोंका मोहल्ला होता है। वहाँके अन्त्यज भी काठियावाड़के अन्त्यजोंकी बनिस्बत ज्यादा निडर मालूम हुए। शायद वे अधिक बुद्धिमान भी होंगे। बहुतसे अन्त्यज बुनाईका काम करते हैं। भूजमें तो एक अन्त्यजका कुटुम्ब बढ़ईका काम करता है। कच्छकी सभाओंमें जिस तादादमें अन्त्यज लोग आये थे उतनी तादादमें और भी कहीं आते हुए मैंने नहीं देखा है। सभाओंमें मैं अन्त्यजोंका प्रश्न पूछता था और वे निर्भय होकर बड़े विचारके साथ उसका उत्तर देते थे। वे अपनी तकलीफें भी समझाते थे। मान्डवीके अन्त्यजोंमेंसे कोई २५ कुनबोंने अर्थात् १०० आदमियोंने मद्य-मांसादि न खानेकी और खादी पहननेकी प्रतिज्ञा ली थी। अंजारमें भी बहुतसे अन्त्यजोंने एक विशाल सभाके समक्ष मिट्टी न खानेकी और मद्यपान न करनेकी प्रतिज्ञा ली। मुझे कुछ ऐसा भास होता है कि कच्छके अन्त्यजोंमें मद्यपानका रिवाज कुछ कम है और साधारण जनसमाजमें तो अस्पृश्यता दिखायी भी नहीं देती थी। केवल उच्च मानी जानेवाली कौमें, ब्राह्मण,

बनिये, भाटिया और लुहाना ही अस्पृश्यताका ढोंग करते हुए दिखायी देते थे। ढोंग इसलिए कहता हूँ क्योंकि बहुतेरे तो केवल डरके मारे भद्र लोगोंमें जाकर बैठे थे। उनमेंसे बहुतसे लोगोंने मुझको यह कहा था कि वे अस्पृश्यताको नहीं मानते। लेकिन उन्हें जातिसे बहिष्कृत हो जानेका डर है। इसलिए वे जाहिरमें उसका विरोध नहीं करते हैं। जो जुलूस निकलते थे उनमें अन्त्यज लोग भी शामिल हो जाते थे लेकिन इसपर कोई एतराज नहीं करता था और यह तो मैंने कई जगहोंपर देखा कि वहाँ उच्चवर्णके युवक निर्भय होकर अन्त्यजोंकी सेवा कर रहे हैं। इसलिए यद्यपि कच्छमें अन्त्यजोंके सम्बन्धमें कुछ दुःखद अनुभव अवश्य हुए हैं फिर भी वहाँ अस्पृश्यताका जोर भी बहुत कुछ कम हो गया है। कुछ धर्मान्ध लोग उसको पकड़े बैठे हैं लेकिन उनका यह यत्न निरर्थक है।

हिन्दी-नवजीवन
१९ नवम्बर, १९२५



कच्छके संस्मरण

मूंद्रामें सबसे अधिक कटु अनुभव हुआ। वहाँ तो दम्भ, आडम्बर और नाटक ही देखनेको मिला था। मुसलमानोंको भी, मानों वे भी अस्पृश्यता क्यों न मानते हों, भद्र लोगोंमें ही बिठाया गया था। अन्त्यज विभागमें तो केवल मेरे साथवाले और मुसलमान स्वयंसेवक ही बैठे थे। हिन्दू स्वयंसेवकोंमेंसे यद्यपि बहुतसे उनके कथनानुसार अस्पृश्यताको नहीं मानते थे फिर भी उन्हें भद्र लोगोंके बाड़ेमें ही रक्खे गये थे।

मूंद्रामें एक अन्त्यजशाला है। लेकिन उसे तो एक सखी मुसलमान सेठ इब्राहीम प्रधान अपने खर्चसे चलाते हैं।

इस शालाकी कुछ बातें बड़ी अच्छी गिनी जा सकती हैं। बालक बड़े साफ रक्खे जाते हैं। शालाका मकान शहरके मध्य भागमें है। बालक टूटे-फूटे उच्चारणसे संस्कृतके श्लोक भी रटाये गये हैं। कताई, बुनाई, धुनकना इत्यादि काम शालामें ही होता है। केवल लड़कोंके पहननेके कपड़ोंमें खादीका इस्तेमाल नहीं किया गया था। लेकिन संचालकोंने उसमें जिस कपड़ेका प्रयोग किया था, उसे शुद्ध खादी मानकर ही उसका उपयोग किया था। पाठकगण शायद यह ख्याल करेंगे कि मुझे इस शालासे तो कुछ संतोष हुआ ही होगा। लेकिन मुझे उससे संतोष नहीं हुआ। मुझे उसे देखकर दुःख हुआ था। क्योंकि इसका यश या पुण्य

किसी भी हिन्दूको प्राप्त नहीं हो सकता था। इसके दाता सेठका नाम तो मैं ऊपर दे चुका हूँ। उसके संचालक श्रीमान् आगाखांके मूंद्राके वारस हैं। सेठ इब्राहीम प्रधानको उनके दानके लिए धन्यवाद ही दिया जा सकता है क्योंकि जैसा कि मुझसे कहा गया था वह शाला अन्त्यजोंको या उसमें पढ़नेवाले बालकोंको मुसलमान बनानेके लिए नहीं चलाई जा रही है। मूंद्रावासियोंने भी मुझसे कहा था कि संचालक मौलेदीना मेघजी वेदान्ती और ज्ञानी हैं। यह संतोषकारक अवश्य है, लेकिन इसमें हिन्दुओंका क्या है? अस्पृश्यता तो हिन्दू-धर्मका मैल है और हिन्दू-धर्मका पाप है। उसका प्रायश्चित भी तो हिन्दुओंको ही करना चाहिये। मेरे शरीरपर चढ़े हुए मैलको जब मैं निकालूँगा तभी वह निकलेगा। यह शाला सेठ इब्राहीम प्रधानको जितनी शोभा देती है मून्द्राके हिन्दुओंको वह उतनी ही शरमानेवाली है।

लेकिन जिस प्रकार ऐसे दुःखद प्रसंगोंको देखनेका मुझे दुर्भाग्य प्राप्त हुआ था, उसी प्रकार मुझे कुछ अच्छे प्रसंग भी देखनेको मिले थे। श्री जीवराम कल्याणजीके नामसे पाठक परिचित हैं। उन्होंने अन्त्यज सेवाको अपना धर्म बना लिया है। उनकी दान वीरता उनका सबसे बड़ा भारी गुण नहीं है लेकिन स्वयं सेवा करनेका उनका आग्रह ही उनको अधिक शोभा देता है। वे अपना धन, अपना समय सब खादी और अन्त्यजके काममें लगा देते हैं। मान्डवीके श्री गोकलदास खीमजी भी निर्भय होकर अन्त्यजोंकी अच्छी सेवा कर रहे हैं। अपने पाससे खर्च देकर वे, एक अन्त्यजशाला चलाते हैं। ऐसे अन्त्यज सेवकोंको मैंने वहाँ हर जगह देखा है। इसलिए कच्छकी अस्पृश्यताके संबन्धमें निराश होनेका मुझे कुछ भी कारण दिखाई नहीं देता। सभाओंके लज्जाजनक दृश्योंको मैं क्षणिक मानता हूँ। स्थायी काम तो हो ही रहा है और इसमें मुझे कुछ भी संशय नहीं है कि वह और भी बढ़ता ही जायगा।

लेकिन अन्त्यजोंको राज्यकी तरफसे बहुत कुछ दुःख उठाना पड़ता है। अन्त्यजोंके लिए यहाँ एक कानून है, उसे बहुतसे लोग तो व्यभिचारके ठेकेके नामसे जानते हैं। इस कानूनकी रूसे अन्त्यजोंको व्यभिचार करनेपर सजा दी जाती है और इसका ठेका दे दिया जाता है। जो शख्स इसके लिए सबसे अधिक रुपये देता है उसे राज्यकी तरफसे यह हक होता है कि वह अकेला ऐसे जुर्म पकड़ सकता है और उसमें जो कुछ भी जुर्माना होता है वह भी उसीको मिलता है। इसलिए ठेकेदारका काम यह होता है कि जैसे बने वैसे वह ऐसे जुर्मोंको बढ़ावे, अर्थात् जहाँ व्यभिचार नहीं होता है वहाँ भी उसे पैदा करके या उसका आरोपण करके भी ठेकेदार जुर्माना वसूल करता है। अन्त्यज लोग इससे बड़े दुःखी हैं।

बुनाईका काम करनेवालोंको भी बड़ी तकलीफ है। जिस किसी बुनने-वालोंने किसी महाजनसे कुछ रुपये लिये कि वह जबतक उसे पूरा नहीं कर देता

है वह किसी दूसरेके लिए कुछ भी नहीं बुन सकता है। इसलिए उन्हें एक या दो आदमीके गुलाम बनकर ही रहना पड़ता है। जो कुछ भी वह दाम दे उन्हें लेने पड़ते हैं और उसीके लिए कपड़ा बुनना पड़ता है। वह लेनदार जो चाहे व्याज माँग सकता है। इसलिए उसके हाथसे बेचारा अन्त्यज कभी भी रिहा नहीं हो सकता है। इस तकलीफके कारण कुछ लोगोंने तो अपना धन्धा ही छोड़ दिया है। कच्छमें हजारों अन्त्यज बुननेका काम जानते हैं और यदि यह कानून न होता तो वे खुशीसे अपनी जीविका इसीमें प्राप्तकर सकते थे। मुझे आशा है कि कच्छ नरेश इन दोनों कष्टोंमेंसे उन्हें बचा लेंगे। मैंने ये दोनों बातें उनके सामने पेश की हैं।

हिन्दी-नवजीवन
२६ नवम्बर, १९२५

धर्मका अपमान

मद्रासके पास तिरुपति नामक एक पवित्र तीर्थ है। उसकी बहुत बड़ी महिमा है। बंगालमें जैसा तारकेश्वरका है वैसा ही मद्रासमें तिरुपतिका है। इस तीर्थके संबंधमें लोगोंमें यह श्रद्धा फैली हुई है कि पतितोंमें भी जो पतित हो वह भी वहाँ जाकर तिर जा सकता है। उसके नजदीक ही तिरुचन्नुर नामक एक दूसरा तीर्थस्थल भी है। तिरुचन्नुरके मन्दिरकी भी वैसी ही महिमा है। इस मन्दिरमें जाकर एक माला जातिका अन्त्यज दर्शन कर आया था और इसलिए उसपर दफे फौजदारी २९५वें के मुताबिक धर्मका अपमान करनेका और पवित्र स्थानको अपवित्र करनेका जुर्म लगाया गया था। वह जुर्म उसपर साबित भी हो गया और उसे ७५) जुरमाना भी किया गया। यदि जुरमाना न दे सके तो एक महीने सख्त कैदकी सजा दी गयी थी।

यदि कोई यह पूछे कि मैजिस्ट्रेटने यह सजा कैसे दी होगी? न्यायासनको भूषित करनेवाले उस न्यायाधीशने इस सारे किस्सेका जिस प्रकार जिक्र किया है वह वर्णन उन्हींके शब्दोंमें यहाँ देना चाहिये—

"मुद्दालेह दस वर्ष हुए तिरुचन्नुरके मन्दिरकी यात्राको हर साल जाता है। गत अक्तूबरकी तारीख १६ को भी वह हमेशाकी तरह वहाँ गया था। फरियादी साक्षी नं० ३ एक दुकानदार है। उसीकी दुकानपरसे मुद्दालेह पूजाके लिए नारियल और कपूर खरीदता है। इस समय भी उसने उसीकी दुकानपरसे वे चीजें खरीदीं। उस समय उसने दुकानदारसे पूछा था कि माला लोगोंको मन्दिरमें जाने देते हैं या नहीं? दुकानदारने उत्तरमें कहा था कि मालाओंको मन्दिरमें जानेकी इजाजत नहीं मिल सकती है। यह सुनकर वह वहाँसे

चला गया। । थोड़ी देरके बाद फरियादी साक्षी नं० २ ने उसे 'गर्भगूड़ी' के संघमें देखा। वहाँ उसने पुजारीको नारियल और कपूर दिये और आरतीके लिए चार आने भी दिये। उसके बाद उसको परसाद दिया गया और वह वहाँसे चल दिया।

फरियादी साक्षी नं० ४, जिस समय मुद्दालेहने दूकानदारसे पूछा कि माला लोग मन्दिरमें जा सकते हैं या नहीं उस समय वह वहाँ हाजिर था इसलिए उसे सन्देह हुआ। भीड़में जाकर उसने उसकी तलाश की और मन्दिरके सुर्वण द्वारके नजदीक उसे पाया। फरियादी साक्षी नं० ५ ने उसे मन्दिरसे हाथमें टूटा हुआ नारियल लेकर आते देखा था।

फरियादी साक्षी नं० ६ मन्दिरका मिरासदार है उसका और फरियादी नं० २ का कहना है कि माला लोगोंको हिन्दू मन्दिरमें दाखिल होनेकी मनाही है। यदि कोई माला मन्दिरमें चला भी जाय तो जबतक उसकी शुद्धि न की जाय वह मन्दिर पूजाके योग्य नहीं होता है। उसी दिन मन्दिरकी शुद्धि भी की गयी थी क्योंकि मुद्दालेह मन्दिरमें गया था। फरियादी साक्षी नं० ७ तिरुपतिके पंडित है, उन्हें महामहोपाध्यायकी उपाधि भी प्राप्त है। उनका भी यह कहना है कि माला लोगोंको हिन्दू मन्दिरमें प्रवेश करनेकी मनाही है और वे अपने कथनका समर्थन करनेके लिए शास्त्रके प्रमाण भी देते हैं।

मुद्दालेह स्वयं इस बातको स्वीकार करता है कि वह दूकानदारसे नारियल और कपूर खरीदकर जहाँ हमेशा पूजा किया करता था और जहाँ रथ खड़ा किया जाता है वहाँ गया था। लेकिन इतनेमें ही उसने देखा कि यात्रालु लोग "गोविन्दा, गोविन्दा, गोविन्दा" पुकारते हुये चले आ रहे थे। इस ध्वनिको सुनते ही उसे भी जोश आ गया और उसको कुछ भी होश न रहा। जब उसे होश आया उसने अपनेको मन्दिरके ध्वज स्तंभके नजदीक पाया और डरकर वहाँसे भाग गया।"

कैसे विस्तारसे इस गुन्हेका वर्णन किया गया है? सजा करनेवालेकी वाणीसे भी कितना करुणा टपक रही है। मुद्दालेह बेचारा शुद्ध सत्यवादी है—न्यायाधीश और फरियादी साक्षियोंके जितना ही सत्यवादी है—और न्यायाधीश भी इसको स्वीकार करते हैं क्योंकि वे भी मुद्दालेहके वचनोंका ही उल्लेख करते हैं। मुद्दालेह मन्दिरके सुवर्ण द्वारतक गया इतना ही नहीं, उसने आरतीके लिए चार आने भी चढ़ाये थे! और दुकानदारसे यह पूछकर मालूम कर लेनेके बाद कि माला लोग मन्दिरको अपवित्र नहीं कर सकते हैं उसने ऐसा भयंकर अपराध किया था! क्योंकि मिरासदार कहता है इसलिए मन्दिर अपवित्र हुआ था! और सरकारसे प्राप्त महामहोपाध्यायकी उपाधि धारण करनेवाले एक पण्डित आकर शास्त्रके वचनोंका उल्लेख करके कहते हैं इसलिये भी मन्दिर अपवित्र हुआ था! इससे अधिक सबूतोंकी क्या आवश्यकता है?

हिन्दी-नवजीवन
१४ जनवरी, १९२६

अस्पृश्यताका बचाव

त्रावणकोरसे एक महाशय लिखते हैं:—

"ब्राह्मण और उनके आचार और रीतिरिवाजोंके संबंधमें कुछ गलतफहमी हुई सी मालूम होती है। आप अहिंसाकी प्रशंसा करते हैं लेकिन मात्र ब्राह्मणोंकी ही जाति ऐसी है जो धर्म कार्य समझकर उसका पालन करती है। यदि कोई उसका भंग करता है तो हम उसे जातिसे बहिष्कृत समझते हैं। जो लोग मांस खाते हैं या मांसके लिए हत्या करते हैं उनके सहवासमें आना ही हम लोगोंकी दृष्टिमें पाप है। कसाई, मच्छी-मार, ताड़ी बनानेवाला, मांस खानेवाला, शराब पीनेवाला, धर्महीन मनुष्यके नजदीक आनेसे ही हमारा नैतिक और भौतिक वायुमंडल भ्रष्ट हो जाता है। तप और धार्मिकताकी हानि होती है और पवित्रताका भाव नष्ट हो जाता है।

इसे हमलोग भ्रष्टता मानते हैं और इसलिए हमें स्नान करना पड़ता है। यद्यपि समय और भाग्यने तो कई बार पलटा खाया है लेकिन ऐसे नियमोंके कारण ही तो ब्राह्मण लोग अपने परंपरागत गुणोंकी रक्षा कर सके हैं। यद्यपि इस प्रकारसे संयमको दूर कर दिया जायगा और ब्राह्मणोंको दूसरेसे स्वतंत्रतापूर्वक मिलने जुलने दिया जायगा तो उनका इतना अधःपतन होगा कि वे हलकेसे भी हलके जातिहीन शूद्रोंके समान बन जावेंगे, छुपे तौरसे वे बहुत कुछ दुराचार करेंगे और पवित्र होनेका ढोंग भी करेंगे और साथ ही साथ संयमकी मर्यादाको दूर करनेका भी प्रयत्न करेंगे, क्योंकि इस मर्यादाके कारण अपने पापोंको छिपानेमें उन्हें बड़ी कठिनाई मालूम होती है। हम यह तो जानते ही हैं कि आज जो लोग नाममात्रके ब्राह्मण हैं वे ऐसे ही हैं और वे लोग अपनी गिरी हुई दशापर दूसरोंको खींच ले जानेके लिए बड़ा प्रयत्न कर रहे हैं।

उस स्थानमें जहाँ लोगोंकी आदत और उनके भले बुरे ख्यालके अनुसार (रंग, अधिकार और धनके भेदके अनुसार नहीं जैसा कि पश्चिममें गलतीसे किया जा जा रहा है) उनका जात्यानुसार वर्गीकरण करके उनके धन्धेको और सामाजिक और गृहविषयक सुविधाओंको देख उनकी स्पष्ट मर्यादा बाँधकर उन्हें जुदे केन्द्रोंमें रहनेके लिए स्थान दिया जाय जैसा कि हमारी मातृभूमिमें किया जाता है, तो यह संभव नहीं कि कोई मनुष्य यदि अपनी रहनी-करनी बदले भी तो वह बहुत दिनोंतक छिपा रह सके।

लेकिन यदि कसाई, मांस खानेवाले और शराबखोरोंमें कोई जाकर रहे तो यह संभव नहीं कि वह उनमें रह सके और अपने वैदेशिक गुणोंकी रक्षा कर सके। स्वभावतः हमलोग अपनी रुचिके अनुकूल ही वातावरण पसन्द करते हैं। इसलिए ब्राह्मणके रहनेकी जगहका वायुमंडल भी भौतिक, नैतिक और धार्मिक दृष्टिसे पवित्र

रखना चाहिये और कसाई, मच्छीमार और ताड़ी बनानेवालेसे उनकी रक्षा करनी चाहिये ।

भारतवर्षमें जाति और उनके धंधे अविछिन्न भावसे जुड़े हुए हैं और इसलिए स्वभावतः ही जिस जातिका वह मनुष्य है उसका धंधा भी वही मान लिया जाता है ।

यही कारण है कि अस्पृश्यता और नजदीक न आने देनेकी मर्यादा रक्खी गयी है। इससे हमारी जातिकी पवित्रताकी केवल रक्षा ही नहीं होती है बल्कि दुरा-चारियोंको जातिसे बहिष्कृत करनेकी सामाजिक और धार्मिक सीधी सजा भी दी जाती है और इसलिए प्रकारान्तरसे उन्हें, यदि वे हमारे साथ सब प्रकारका व्यवहार रखना चाहते हों तो, अपनी बुरी आदतोंको छोड़नेके लिए मजबूर भी करती है।

इसलिए आप उन्हें सार्वजनिक तौरसे यह उपदेश दें कि वे अपने पाप कर्मोंको छोड़ दें और कताई और बुनाईका कार्य करने लगें और वे आवश्यक धार्मिक क्रियायें जैसे नहाना, उपवास करना और प्रार्थना करना इत्यादि भी करें । यदि वे कुछ वर्षोंमें नजदीक न आनेकी मर्यादाको दूर करना चाहते हैं तो उन्हें उन लोगोंके सा मिलना जुलना न चाहिये कि जिन लोगोंने अपनी पुरानी आदतोंका त्याग नहीं किया है । शास्त्रोंने यही मार्ग दिखाया है । मनुष्यके अपने खानगी पाप-कर्मोंको और उसके गुणोंको जाननेका कोई मार्ग नहीं है इसलिए ऐसी बातोंसे कोई लाभ नहीं कि फलानेका मन पवित्र है और फलानेका मन मैला है। मनुष्यकी सामाजिक आदतोंसे ही हम उसके खानगी जीवनकी परीक्षा कर सकते हैं । इसलिए जो शख्स खुले तौरसे हमारे अहिंसा धर्मको स्वीकार नहीं कर सकता है और मच्छी मारना और मांस खाना नहीं छोड़ सकता है वह इस योग्य नहीं माना जा सकता कि वह नजदीक भी न आनेकी परम्परागत मर्यादाका त्याग करें । सच बात तो यह है कि अस्पृश्यता और कुछ नहीं है लेकिन अहिंसा धर्मकी रक्षा और प्रचारका मात्र व्यावहारिक साधन है ।"

लेखकने जिस प्रश्नको छेड़ा है उसपर पहले कई मरतबा विचार किया जा चुका है फिर भी उनकी दलीलोंमें उनका जो भ्रम है उसे दूर करना आवश्यक है। पहली बात तो यह है कि ब्राह्मणोंकी तरफसे जो यह दावा किया जा रहा है कि वे निरामिषभोजी हों, सम्पूर्ण सत्य नहीं है। यह केवल दक्षिणके ब्राह्मणोंके संबंधमें ही हो सकता है । लेकिन दूसरी जगहोंमें तो वे स्वतत्रंतापूर्वक मच्छी खाते हैं और बंगाल, काश्मीर इत्यादि स्थानोंमें तो मांस भी खाते हैं। दक्षिणमें भी मांस खानेवाले और मच्छी खानेवाले सब लोग अस्पृश्य नहीं हैं। और अस्पृश्य जो अत्यन्त पवित्र है वह भी जातिहीन समझा जाता है क्योंकि उसका जन्म उस कुलमें हुआ है जो अन्यायपूर्वक अस्पृश्य और समीप न आने योग्य गिना जाता है। अधिकारप्राप्त मांस खानेवाले अब्राह्मणोंके साथ कन्धेसे कन्धा मिला-

कर क्या ब्राह्मण लोग नहीं चलते हैं। क्या वे मांस खानेवाले हिन्दू राजाओंका आदर नहीं करते हैं?

लेखक जैसे शिक्षित मनुष्योंको, जिस रिवाजका किसी भी प्रकारका बचाव नहीं किया जा सकता है और जिसकी बुनियाद अब हिल उठी है, उस रिवाजका अपने जोशमें आकर, अपनी दलीलोंका स्पष्ट विचार किये बिना ही, बचाव करते हुए देखकर बड़ा ही आश्चर्य और दुःख होता है। लेखक मांस खानेकी छोटी सी हिंसाकी बातपर बड़ा जोर देते हैं। लेकिन कोरी काल्पनिक पवित्रताकी रक्षाके लिए करोड़ों भाइयोंको जानबूझकर दबाये रखनेकी बड़ी भारी हिंसाकी बातको वे भूल जाते हैं। मैं उन्हें यह कहता हूँ कि जिस निरामिषताकी रक्षाके लिए दूसरे मनुष्योंको हलके मानकर उनका बहिष्कार करना पड़ता है वह संग्रह करने योग्य नहीं है। इस प्रकार उनकी रक्षा की जायगी तो वह गरमीमें उगनेवाले पौदोंके समान ठंढी हवा लगते ही नष्ट हो जायगी। निरामिषताको मैं बड़ा महत्व देता हूँ। मुझे विश्वास है कि ब्राह्मणोंने इस निरामिषता और स्वयंनिर्मित संयमके नियमोंसे बड़ा आध्यात्मिक लाभ उठाया है। लेकिन जब वे अति उन्नत अवस्थामें थे उस समय उन्हें अपनी पवित्रताकी रक्षा करनेके लिए बाह्य मददकी आवश्यकता न थी। कोई भी गुण जब वह बाह्य प्रभावोंका सामना करनेमें असमर्थ हो जाता है तब उसकी जीवनशक्ति नष्ट हो जाती है।

और लेखक जिस प्रकारकी रक्षाका जिक्र करते हैं वैसी रक्षाके लिए ब्राह्मणोंके दावेसे अब कोई लाभ भी नहीं है क्योंकि अब बहुत देर हो चुकी है। सद्भाग्यसे ऐसे ब्राह्मणोंकी तादाद अब बढ़ रही है जो ऐसी रक्षाकी बातोंके प्रति घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं, इतना ही नहीं जो बड़ी-बड़ी तकलीफें सहन करनेका जोखिम-उठा करके भी इसके सुधारकी हलचलके नेता बन रहे हैं। इसीसे सुधारके अति शीघ्र प्रगति करनेकी बड़ी आशा बँधती है।

लेखक मुझसे यह चाहते हैं कि नीच गिने जानेवाले लोगोंको मैं पवित्र बननेके लिए उपदेश दूं। यह मालूम होता है कि वे 'यंग इंडिया' नहीं पढ़ते हैं अन्यथा वे यह अवश्य जान सकते थे कि उन्हें ऐसा उपदेश देनेका एक भी मौका मैं व्यर्थ जाने नहीं देता हूँ। मैं उन्हें यह समाचार भी देता हूँ कि वे उसका संतोषजनक उत्तर भी देते हैं। मैं लेखकको उन सुधारकोंके वर्गमें शामिल होनेके लिए निमंत्रण दूंगा जो इन दुःखी लोगोंमें जाकर उनके संरक्षक बनकर नहीं, लेकिन उनके सच्चे मित्र बनकर काम कर रहे हैं।

हिन्दी-नवजीवन
२१ जनवरी, १९२६

हिन्दू-धर्मकी स्थिति

सनातनी हिन्दूका उपनाम धारण करके एक भाई लिखते हैं:—

"हिन्दू धर्मकी आजकी स्थिति जितनी विषम है उतनी ही विचित्र भी है। कट्टर हिन्दूलोग दावा करते हैं कि वे शास्त्रोंके वचनोंके अनुसार ही चलते हैं, लेकिन यही मालूम नहीं होता कि कोई शास्त्र पढ़ता भी है या नहीं। यदि शास्त्रोंका अध्ययन करें तो दो बातोंका स्पष्ट ज्ञान हो जाय।

१—आज धर्मचुस्त माने जानेवाले प्रसिद्ध लोग भी शास्त्रोंके अनुसार नहीं चलते हैं।

२—शास्त्रोंमें जो लिखा है और जितना प्रमाण माना गया है उसके अनुसार सोलह आना न कोई चल सकता है और न कोई उस तरह चलना ही पसन्द करेगा।

साधारण जनताका राजमार्ग तो यही होता है कि जिस प्रकार शिष्ट लोगोंका व्यवहार होता हो उसी प्रकार उन्हें भी चलना चाहिये। शिष्ट लोगोंको यह दिखाना पड़ता है कि वे शास्त्रोंके अनुकूल ही व्यवहार कर रहे हैं। अर्थात् सब जगह दंभ ही दंभ दिखायी देता है।

कौनसी रूढ़ि चुस्त सनातनी है इसका कहीं पता ही नहीं चलता है। सनातन रूढ़ि क्या हो सकती है इसके संबन्धमें भी जुदे-जुदे प्रान्तकी कल्पनाएँ निराली होती हैं। सामाजिक धर्माचारका समग्र रूपसे अध्ययन करनेकी दृष्टिसे कोई सारे देशमें भ्रमण नहीं करता है, निरीक्षण नहीं करता है और न कहीं तुलनात्मक चर्चा ही होती है। सुधारक लोग जो टीकाएँ करते हैं उसके मूलमें अक्सर धार्मिकताके प्रति कोई आदर नहीं होता है, यही नहीं वस्तुस्थितिका अध्ययन भी पूरा नहीं होता है इसलिये उनकी टीकाएँ अंधी और निर्वीर्य होती हैं। आज यदि कोई हिन्दू-रिवाजोंका अध्ययन करता है तो वे योरोपियन अधिकारी और मिशनरी लोग ही हैं।

हिन्दुओंमें हर एकका यह ख्याल है कि अपने प्रान्तका रिवाज ही रूढ़ हिन्दू-धर्म है। अस्पृश्यता-निवारणमें कहो या हिन्दू संगठनमें, अपने-अपने प्रान्तकी स्थितिका विचार करके ही नेतागण अपनी राय कायम करते हैं।

इसका एक ही उदाहरण बस होगा। आप कहते हैं कि अस्पृश्यताका निवारण करनेके बाद अस्पृश्योंकी स्थिति शूद्रके जैसी रहेगी। यहाँ तक तो ठीक है, लेकिन सब जगह शूद्रोंकी स्थिति भी कहाँ एक समान है? जिन प्रान्तोंमें ब्राह्मणलोग भी मांसाहार या मत्स्याहार करते हैं वहाँ शूद्रोंकी एक प्रकारकी स्थिति है। जहाँ ब्राह्मणेतर दूसरे सब वर्ण मांस-मत्स्यका सेवन कर सकते हैं वहाँ शूद्रोंकी स्थिति दूसरी ही है। और जिन प्रान्तोंमें

ब्राह्मणोंके साथ वैश्यादि दूसरे वर्ण भी निरामिष भोजी हैं वहांकी स्थिति और भी निराली है। आपने एक स्थानपर लिखा है कि शूद्रोंके हाथका पानी पीनेमें यदि अन्य वर्णोंको कोई एतराज नहीं होता है तो अन्त्यजोंके हाथका पानी पीनेमें भी उन्हें कोई एतराज नहीं होना चाहिये।

अब जहाँ कितने ही हिन्दू मांसाहार करनेवालेके हाथका पानी न लेनेका आग्रह करते हैं वहां तिरस्कारके बनिस्बत धार्मिक शौचका विचार ही प्रधान होता है। कुछ हिन्दुओंको सामान्य मांस खानेवालोंके हाथसे शुद्ध जल ग्रहण करनेमें कोई एतराज नहीं होता है लेकिन गोमांस खानेवाली जातियोंके हाथका पानी लेनेमें उन्हें बड़ा एतराज होता है और इसलिए वे शूद्रोंके हाथका पानी पीनेपर भी ईसाई, मुसलमान और अन्त्यजोंके हाथसे पानी नहीं लेते हैं। इन तीनों जातिके लोगोंको स्पर्श किया जा सकता है लेकिन उनके हाथका पानी कैसे लिया जाय?

शायद आप यह नहीं जानते होंगे कि गुजरातके अन्त्यज मरे गाय-बैलोंका मांस खाते हैं, यही नहीं, वे गोमांस बेचनेवाले कसाइयोंके यहांसे गोमांस लाकर खानेमें भी कोई पाप नहीं समझते हैं। इस हालतमें कट्टर हिन्दूके हृदयमें यह ख्याल अवश्य ही होगा कि अन्य शूद्रोंकी तरह उनके हाथका पानी कैसे पिया जाय? इसके संबंधमें आप अपना वक्तव्य प्रकाशित करेंगे तो अच्छा होगा।

आपके उपदेशक और अन्त्यज-सेवक अन्त्यजोंको मिट्टी न खानेको समझाते हैं। मिट्टी खानेसे रोग होते हैं। यह हमारी दलील होती है। अन्त्यज लोग कहते हैं कि इतने जमानेसे खाते चले आ रहे हैं, हमें रोग कहाँ हुए है? हमलोगोंके तो वह अनुकूल हो गया है। यदि अन्त्यज लोग मिट्टी और दूसरा गोमांस भी खाना छोड़ दें तो अस्पृश्यता निवारणका कार्य आसान हो जायगा। और फिर उनके हाथसे पानी लेनेमें भी कोई एतराज न होगा। गुजरातके अन्त्यजोंकी एक परिषद बुलाकर उनसे आप इतना करा सकें और उन्हींकी कौमके कुछ नेतागण इतना सुधार एकदम कर देनेके लिए कमर कस लें तो क्या अच्छा हो?"

इस पत्रमें केवल एक पक्षकी ही दलीलें पेश की गयी हैं। लेखकको इस चिन्ताके लिए स्थान अवश्य है। हिन्दू-धर्म जीवित धर्म है उसमें भरती और ओट आती ही रहती है। वह संसारके नियमोंका ही अनुसरण करता है। मूल रूपसे तो वह एक ही है लेकिन वृक्ष रूपसे वह विविध प्रकारका है। उसपर ऋतुओंका असर होता है। उसका बसन्त भी होता है, पतझड़ भी। उसकी शरद ऋतु भी होती है और उष्ण ऋतु भी। वर्षासे भी वह वंचित नहीं रहता है। उसके लिए शास्त्र भी हैं और नहीं भी हैं। उसका एक ही पुस्तकपर आधार नहीं है। गीता सर्वमान्य है लेकिन वह केवल मार्गदर्शक है। रूढ़ियोंपर उसका बहुत कम असर होता है। हिन्दू-धर्म गंगाका प्रवाह है। मूलमें वह शुद्ध है। मार्गमें उसपर मैल चढ़ता है। फिर भी जिस प्रकार गंगाकी प्रवृत्ति अन्तमें पोषक है उसी प्रकार हिन्दू-धर्म भी है। हर एक

प्रान्तमें वह प्रान्तीय स्वरूप धारण करता है। फिर भी उसमें एकता तो होती ही है। रूढ़ि धर्म नहीं है। रूढ़िमें परिवर्तन होगा लेकिन धर्मसूत्र तो वैसेके वैसे ही बने रहेंगे।

हिन्दू-धर्मीकी तपश्चर्यापर ही हिन्दू-धर्मकी शुद्धताका आधार रहता है। जब कभी धर्मपर आफत आती है तभी हिन्दू-धर्मी तपश्चर्या करता है, बुराईके कारण ढूढँता है और उसका उपाय करता है। शास्त्रोंमें वृद्धि होती ही रहती है। वेद, उपनिषद, स्मृति, इतिहास आदि एक साथ एक ही समयमें उत्पन्न नहीं हुए हैं। लेकिन प्रसंग आनेपर ही उन-उन ग्रन्थोंकी उत्पत्ति हुई है। इसलिए उसमें विरोधाभास भी होता है। वे ग्रंथ शाश्वत सत्यको नहीं बताते हैं। लेकिन अपने-अपने समयमें शाश्वत सत्यका किस प्रकार अमल किया गया था यही वे बताते हैं। उस समय जैसा अमल किया गया था वैसा दूसरे समयमें भी करें तो निराशाके कूपमें पड़ना होगा। एक समय हमारे यहाँ पशु-यज्ञ भी होता था; इसलिए क्या आज भी करेंगे? एक समय हम लोग मांसाहार करते थे; इसलिए क्या आज भी करेंगे? एक समय चोरके हाथ-पैर काट डाले जाते थे; क्या आज भी उनके हाथ-पैर काटेंगे? एक समय हमारे यहाँ एक स्त्री अनेक पति करती थी; क्या आज भी करेगी? एक समय हमलोग बालकन्याका दान करते थे; क्या आज भी वही करेंगे? एक समय हम लोगोंने कुछ मनुष्योंकी प्रजाको तिरस्कृत मानी थी इसलिए क्या आज भी उसे तिरस्कृत ही मानेंगे?

हिन्दू-धर्म जड़ बननेसे साफ इन्कार करता है। ज्ञान अनन्त है। सत्यकी मर्यादाकी किसीने भी खोज नहीं पायी है। आत्माकी नयी-नयी शोध होती ही रहती है और होती ही रहेगी। अनुभवके पाठ पढ़ते हुए हमलोग अनेक प्रकारके परिवर्तन करते रहेंगे। सत्य तो एक ही है, लेकिन उसे सर्वनाशमें कौन देख सका है? वेद सत्य है, वेद अनादि है लेकिन उसे सर्वनाशमें कौन जान सका है? वेदके नामसे जो आज पहचाने जाते हैं वे तो उसका करोड़वाँ भाग भी नहीं हैं। जो हम लोगोंके पास हैं उसका अर्थ भी सम्पूर्णतया कौन जानता है?

इतना बड़ा जंजाल होनेके कारण ही तो ऋषियोंने हमलोगोंको एक बहुत बड़ी बात सिखाई है 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'। ब्रह्माण्डका पृथक्करण करना असंभव है। अपना पृथक्करण कर देखना शक्य है और अपने आपको पहचाना कि संसारको पहचान लिया। लेकिन अपनेको पहचाननेके लिए प्रयत्न करना आवश्यक है तथा वह प्रयत्न भी निर्मल होना चाहिये। निर्मल हृदयके बिना प्रयत्नका निर्मल होना असंभव है। यमनियमादिके पालनके बिना हृदयकी निर्मलता भी संभव नहीं है। ईश्वरकी कृपाके बिना यमादिका पालन कठिन है। श्रद्धा और भक्तिके बिना ईश्वरकी कृपाकी प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए तुलसीदासजीने रामनामकी महिमा गायी है तथा भागवत्कारने द्वादश मंत्र सिखाया है।

जो दिल लगाकर यह जाप कर सकता है वही सनातनी हिंदू है, बाकी और सब तो अल्लाकी भाषामें अंधेरा कुवाँ है ।

अब लेखककी शंकाओंका विचार करें। योरोपियन लोग हमारे रीति-रिवाजोंको देखते अवश्य हैं लेकिन मैं उसे अध्ययन जैसा अच्छा नाम न दूँगा। वे तो टीका करनेकी दृष्टिसे ही देखते हैं। इसलिए उनके पाससे मुझे धर्म प्राप्त न होगा।

भूतकालमें गोमांसादि खानेवालोंका बहिष्कार भले ही उचित हो आज तो वह अनुचित और असंभव है। अस्पृश्य माने जानेवाले लोगोंसे गोमांस आदिका त्याग कराना हो तो वह केवल प्रेम ही से हो सकेगा, उनकी बुद्धिको जागृत करनेपर ही होगा। उनका तिरस्कार करनेसे न होगा। उनकी बुरी आदतें छुड़ानेके लिए प्रेममय प्रयोग हो ही रहे हैं लेकिन खाद्याखाद्यमें ही हिन्दू धर्मकी परिसीमा कहीं थोड़े ही आ सकती है। उससे अनन्त कोटि अति आवश्यक वस्तु अन्तराचरण है; सत्य, अहिंसा आदिका सूक्ष्म पालन है। गोमांसका त्याग करनेवाले दंभी मुनिके बनिस्बत गोमांस खानेवाला दयामय, सत्यमय, ईश्वरका भय करके चलनेवाला मनुष्य हजार गुना अधिक अच्छा हिन्दू है और जो सत्यवादी है, सत्याचरणी गोमांसादि आहारमें हिंसा देख सका है और जिसने उसका त्याग किया है, जिसको जीवमात्रके प्रति दया है उसे कोटिशः नमस्कार हो। उसने तो ईश्वरको देखा है, पहचाना है, वह परम भक्त है, वह जगद्गुरु है।

हिन्दू धर्मकी और अन्य धर्मोंकी आज परीक्षा हो रही है। सनातन सत्य एक ही है। ईश्वर भी एक ही है। लेखक, पाठक और हम सब मतमतान्तरोंकी मोह जालमें न फँसकर सत्यके सरल मार्गका ही अनुसरण करेंगे तभी हम लोग सनातनी हिन्दू रह सकेंगे। सनातनी माने जानेवाले बहुतेरे भटक रहे हैं। उसमें कौन जानता है किसका स्वीकार होगा? रामनाम लेनेवाले बहुतसे रह जाँयगे और चुपचाप रामका काम करनेवाले विरले लोग विजय माल पहन लेंगे।

हिन्दी-नवजीवन

११ फरवरी, १९२६



बहता हुआ जख्म

कुछ समय पहले दक्षिणके एक अन्त्यजपर मंदिरमें प्रवेश करके धर्मका अपमान करनेके अपराधमें मुकदमा चलाये जानेके विषयकी चर्चा की गयी थी। वैसा ही एक दूसरा मुकदमा अभी वहाँ हुआ है और उसमें भी वैसा ही फैसला दिया गया है। मुरुगेसन नामक एक मालाको तिरुपतिके स्टेशनरी सब-मेजिस्ट्रेटके समक्ष, तिरुचन्नुरके एक मन्दिरमें पूजाके लिए प्रवेश करनेके अपराधके कारण पेश किया गया था। छोटी अदालतने उस प्रवेशका फौजदारी कानूनकी १९५ वीं धाराके अनुसार अमुक वर्गके धर्मका अपमान करनेके इरादेसे (मंदिर) अपवित्र करनेका गुनहा मानकर उसे ७५) जुरमाना या जुरमाना न दे तो १ महीनेकी सख्त कैदकी सजा फरमायी थी। बेचारे अन्त्यजके सौभाग्यसे वहाँ हितैषी सुधारक भी मौजूद थे, उन्होंने अपील करवाई। अपीलकी अदालतने अपीलको मंजूर रक्खा और जो फैसला सुनाया उसमेंसे नीचेका अंश उद्धृत किया गया है—

"नीचेकी अदालतमें मुद्दईकी तरफसे सात गवाहोंके इजहार हुये थे। उन्होंने अपने इजहारोंमें कहा था कि मुजरिम माला जातिका है। मालाओंको मन्दिरमें जानेकी मुमानियत है और यदि वह उसमें प्रवेश करे तो वह मन्दिर अपवित्र हुआ माना जाता है। यह कहा गया है कि अपील करनेवाला मन्दिरमें गर्भगुड़ीतक पहुँच गया था। केवल सवर्ण हिन्दुओंको ही उस स्थानतक जानेकी इजाजत होती है। उस समय वह सभ्य पोशाक पहने हुये था और भस्म तिलक आदि किये हुए था। पुजारीने उसे सवर्ण हिन्दू समझा था। और उससे नारियल लेकर उसे कपूरकी आरतीकी रक्षा भी लेने दी थी और इसके लिए अपील करनेवालोंने चार आनेका निश्चित चन्दा भी दिया था। अपील करनेवाला जब वहांसे चला गया तब मन्दिरके संचालकोंको मालूम हुआ कि वह माला जातिका था और मन्दिर उसके प्रवेशसे अपवित्र हुआ था इसलिए उसकी शुद्धिकी विधिसे शुद्ध करनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई।

पहले तो इस बातपर विचार होना चाहिये कि मुद्दईकी तरफसे जुर्म कायम रखनेके लिए जिन बातोंको साबित करना जरूरी है वे साबित की गई हैं या नहीं। मन्दिरमें माला जातिके जानेसे वह भ्रष्ट हो गया। यह उसी अर्थमें सिद्ध होता है कि उसको शुद्ध करनेके लिए शुद्धिके संस्कारकी आवश्यकता हुई। परन्तु इसके अलावा यह बात साबित करना जरूरी है कि उसके प्रयोगसे अमुक वर्गके मनुष्योंके धर्मका अपमान हुआ है और दूसरा यह कि मुजरिमका ऐसा अपमान करनेका इरादा था या वह यह जानता था कि उससे वैसा कोई अपमान होगा। मुद्दईकी तरफसे पेश किये गये सबूतोंमें इतनी त्रुटि है। इसलिए जुर्म

साबित हुआ नहीं माना जा सकता और इसलिए यह सजा रद्द होनी चाहिये। मेरे ख्यालमें मुकद्दमेंकी फिर जाँच करनेकी कोई आवश्यकता नहीं हैं।"

. पहलेके मुकद्दमेंकी तरह इसमें भी बेचारे तिरस्कृत अन्त्यजके विरुद्ध मुकद्मा दायर करनेवाले, न्यायाधीश और उसका बचाव करनेवाले सभी हिन्दू थे और अपराधी दोनों दफा सख्त कैदकी सजासे बच सके थे (मैं मानता हूँ कि जुरमाना देनेकी उनकी गुंजाईश ही नहीं थी)। फिर भी जिसका निर्णय होना चाहिये था वह न उस समय हुआ था और न इस समय ही हुआ। हिन्दू न्यायाधीश यह निर्णय कर सकते थे कि कोई अन्त्यज हिन्दू पूजा करनेके लिए किसी मन्दिरमें प्रवेश करे तो उससे, जिस हिन्दू धर्ममें होनेका वह दावा करता है और जिसको कि स्वीकार किया जाता है.उस हिन्दू धर्मका किसी भी प्रकार किसी भी अर्थमें अपमान नहीं होता है। कुछ हिन्दुओंके विचारसे अपराधीका मन्दिर प्रवेश अयोग्य भले ही हो, रूढ़िके विरुद्ध हों और चाहे जो कुछ भी हो, वह हिन्दुस्तानके फौजदारी कानूनके अनुसार जुर्म समझा जाय ऐसा उससे किसी भी वर्गके धर्मका अपमान नहीं होता हैं। यह वस्तु उल्लेखनीय है कि अपराधीके शरीरपर तिरस्कृत जातिके कोई चिन्ह न थे। उसका पोशाक सभ्य था और वह भस्म और तिलक किये हुए था। यदि ये अत्याचार पीड़ित लोग हमें ठगना चाहें तो उन्हें दूसरोंके साथमें पहचान लेना मुश्किल होगा। धर्मका पवित्र नाम लेकर मनुष्योंके पीछे पड़ना यह शुद्ध धर्मान्ध हठ है। इन अन्त्यजोंके पीछे पड़नेवालोंको यह खबर नहीं है कि वे जितने इज्जतदार होनेका दावा करते हैं उतनी ही इज्जतवाले और हिन्दुओंको जिन धार्मिक विधियोंका पालन करना चाहिये उन सब धार्मिक विधियोंका आदर करनेवाले मनुष्योंको सार्वजनिक मन्दिरोंमें दाखिल होनेसे रोककर ये स्वयं अपने ही धर्मको भ्रष्ट कर रहें हैं। मनुष्यके दिलको तो ईश्वर ही जानता है और यह संभव हो सकता है कि फटे-टूटे वस्त्रोंमें ढका हुआ अन्त्यजका हृदय बड़े टीप-टापके साथ वस्त्रोंसे सज्ज उच्चवर्णके हिन्दूके हृदयसे कहीं अधिक निर्मल हो।

हिन्दी-नवजीवन
१८ मार्च, १९२६

ॐ

अन्त्यज सेवककी कठिनाई

एक अन्त्यज सेवक लिखते हैंः—

"मैं एक अन्त्यजशाला चला रहा हूँ। अक्षय ब्रह्मचर्य पालन करनेकी मेरी शक्ति नहीं है इसलिए विवाहित होकर मर्यादामें रहना ही मुझे उचित मालूम होता है। परन्तु मैं अन्त्यजशाला चलाता हूँ इसलिए मुझे भय है कि मेरी जातिमें मुझे कन्या न मिल सकेगी। परन्तु मुझे तो आजीवन अन्त्यजशालाको ही चलाना है और दूसरा कोई काम मुझे नहीं करना है। अब मैं कैसे शादी करूँ? दूसरी जातिमें विवाह करूँ और विधवा लाऊँ तो समाज मुझे दूषित समझेगा। अब मुझे क्या करना चाहिये?"

यह कुछ ऐसी वैसी उलझन नहीं है। इस युवकको उसके निश्चयके लिए जितना भी धन्यवाद दिया जा सके कम होगा। यदि वे अपने निश्चयमें दृढ़ बने रहेंगे और अपनी इन्द्रियोंपर अंकुश रक्खेंगे तो ईश्वर ही उनकी सहायता करेगा। ऐसे संकटोंसे गुजरनेसे ही तो धर्मकी परीक्षा और रक्षा हो सकती है।

लेखक वैश्य जातिके मालूम होते हैं। सद्भाग्यसे अन्त्यज सेवक बड़े उच्च वर्णोंमें हैं। वर्णाश्रम धर्म है। वर्तमान असंख्य जाति भेदका होना कोई धर्म नहीं है। वह एक रिवाज है। यह कितने ही अंशोंमें हानिकर प्रतीत होता है। रिवाजोंमें सुधार किये जा सकते हैं, करने चाहिये। यदि लेखक वैश्य जातिके ही हों और अपनी उपजातिके बाहर जानेकी हिम्मत कर सकें तो उन्हें बहुत बड़ा क्षेत्र प्राप्त हो सकेगा। उपजातियोंमें अर्थात् वैश्य जातियोंमें अथवा ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्रादि जातियोंकी उपजातियोंमें बेटी-व्यवहारका रिवाज डालनेकी पूरी आवश्यकता है। अर्थात् वर्णाश्रमकी मर्यादाके अनुसार जहाँ रोटी-व्यवहारकी स्वतंत्रता होती है वहाँ बेटी-व्यवहारकी भी स्वतंत्रता होनी चाहिए। यह अन्त्यजसेवक अपना इतिहास और अपनी शक्ति इत्यादिका ब्यौरा अपनी उपजातिके महाजनोंके सामने पेश करें। वहाँ उन्हें कोई मदद न मिले तो उससे निराश न होकर, बिना क्रोध किये ही गुजरातके वैश्य महाजनके समक्ष अपना वही इतिहास पेश करें और उनसे मदद माँगे। यदि उनमें योग्यता होगी तो मेरा दृढ़ विश्वास है कि समाजके उचित बन्धनोंका उल्लंघन किये बिना ही उन्हें मदद मिल सकेगी।

यह सेवक या ऐसी कठिनाईमें फँसे सबलोग यह अच्छी तरह याद रक्खें कि यदि वे अन्त्यज सेवा या ऐसी ही कोई दूसरी सेवा केवल धार्मिक भावसे ही करते हैं तो उन्हें कैसा भी कष्ट क्यों न उठाना पड़े उन्हें कभी असत्यका प्रयोग नहीं करना चाहिये और न क्रोध करना चाहिये अर्थात् हिंसा न करनी

चाहिये। यदि वे इस प्रकार सत्यका और मर्यादित अहिंसाका पालन करेंगे तो वे अपनी, अपने धर्मकी और अपने देशकी शोभाको बढ़ावेंगे और बहुत ही थोड़ा कष्ट उठानेसे ही वे संकटका निवारण कर सकेंगे। इसलिए उपरोक्त सेवकको अपना इतिहास किसी प्रकारकी अतिशयोक्तिके बिना ही प्रकाशित करना चाहिये।

हिन्दी-नवजीवन
२२ अप्रैल, १९२६



अस्पृश्यताके पंजेमें

ट्रावनकोरकी अस्पृश्यता और दूरताके संबन्धमें हमने बहुत कुछ सुना है क्योंकि वहाँ सत्याग्रह किया गया था। कष्ट-सहिष्णुताके दीपकके द्वारा ट्रावनकोरके मैलपर प्रकाश पड़ा था। परन्तु कोचीनमें ट्रावनकोरके बनिस्बत उसका जोर बहुत ही अधिक मालूम होता है। वहाँ कोचीनकी धारा सभामें कोचीनकी रियासतमें अस्पृश्योंके लिए सार्वजनिक रास्तोंका उपयोग करनेकी जो मनाही है उसे दूर करनेके लिए रियासतसे विनती करनेका प्रस्ताव लानेके लिए बार-बार प्रयत्न किये गये थे, परन्तु वैसा प्रस्ताव पेश करनेकी इजाजत ही न मिली।

ऐसे परिश्रमसे न थकनेवाले एक सभासद्ने कोचीनकी धारा सभामें यह प्रश्न पूछा कि सरकार या म्युनिसिपल फंडसे रक्षित कितने कुएँ और तालाब अस्पृश्योंके लिए बन्द रक्खे गये हैं? इसका उत्तर मिला ६१ तालाब और १२३ कुएँ उनके लिये बन्द रक्खे गये हैं। यदि उन्होंने दूसरा प्रश्न यह जाननेके लिए पूछा होता कि ऐसे कितने तालाब और कुएँ हैं जिनका अस्पृश्य लोग उपभोग कर सकते हैं तो बड़ी मजेकी बातें मालूम होतीं।

दूसरा प्रश्न जो पूछा गया वह यह है कि सार्वजनिक-कार्य-विभागके द्वारा बांधे गये और रक्षित कुछ मार्गोंका उपयोग करनेसे अस्पृश्योंको क्या वजह है कि मनाही की गई है? प्रश्नकर्त्ताने अस्पृश्योंके लिए किसीको बुरा न मालूम हो इसलिए अहिन्दू शब्दका प्रयोग किया था। कोचीन सरकारकी तरफसे किसी भी प्रकारके लज्जा भावके बिना ही ये कारण बताये गये थे; 'ये मन्दिर और महलके नजदीकके मार्ग हैं। भूतकालके संस्कारोंको एकदम नहीं तोड़ा जा सकता है। चिरकालसे प्रचलित रिवाजोंका आदर करना ही पड़ता है।' पाठक 'महल' शब्दके ऊपर ध्यान दें। इससे यह ख्याल किया जा सकता है कि कोई पंचमा खुद जाकर अर्ज करे तो यह संभव नहीं है क्योंकि महलके नजदीकके रास्तोंपर

ही जब वह नहीं जा सकता है तो महलमें वह जा ही कैसे सकता है? जिन अधिकारियोंने ऐसा निर्दय उत्तर दिया वे समर्थ, शिक्षित और संस्कारी मनुष्य हैं और जीवनके दूसरे क्षेत्रोंमें उदार मनके भी हैं परन्तु वे एक क्रूर, निर्दय और अधार्मिक रिवाजको प्राचीनताके नामपर उचित बतानेका प्रयत्न करते हैं।

कानूनकी किताबोंमें हमने यह पढ़ा है कि जुर्म और अनीतिको प्राचीनताका कोई लाभ नहीं मिल सकता है। प्राचीन होनेके कारण वे आदरणीय नहीं हो सकते। परन्तु कोचीन रियासतमें तो स्पष्टतः उल्टी ही बात है। अस्पृश्यताका रिवाज, अनीतिका है, जंगली और क्रूर है, इससे कौन इनकार कर सकता है? कोचीनकी रियासतका कानून तो इस प्रकार दक्षिण अफ्रीकाके कानूनोंसे भी बहुत बदतर है। दक्षिण अफ्रीकाका साधारण नियम गोरी और रंगवाली जातियोंकी समानताको स्वीकार करनेसे इन्कार करता है। कोचीनके साधारण नियमका आधार एक खास वर्गमें जन्म होनेसे मानी गई असमानता पर है। परन्तु कोचीनमें जो असमानता है वह दक्षिण अफ्रीकाके बनिस्बत कहीं अधिक अमानुषी है क्योंकि दक्षिण अफ्रीकामें रंगवाले मनुष्योंके बनिस्बत कोचीनमें अस्पृश्योंके मनुष्योचित अधिकार अधिक परिमाणमें छीन लिये गये हैं। अस्पृश्योंके प्रति ऐसा लज्जाजनक व्यवहार रखनेके कारण मैं केवल अकेले कोचीनपर ही दोष लगाना नहीं चाहता हूँ। दुर्भाग्यसे भारतके हिन्दुओंके लिए कम या अधिकांशमें यह आज भी एक सामान्य बात है। परन्तु कोचीनमें धर्मकी मानी हुई आज्ञाके अलावा अस्पृश्यताको राज्यकी आज्ञा भी मिली है। इसलिए कोचीनमें जनसमाजकी इस विषयमें राय बना लेनेसे भी तबतक कुछ लाभ न होगा जबतक कि वह दृढ़ न हो जाय कि वह राज्यको इस जंगलीपनको दूर करनेके लिए मजबूर कर सके।

हिं॰ वी-नवजीवन
२९ अप्रैल, १९२६



बस, स्थिर रहेंगे!

पुराने ख्याल जो मनमें दृढ़ हो गये हैं बड़ी मुश्किलसे दूर होते हैं। नीच गिनी जानेवाली जातियोंपर हिन्दुओंने जो अत्याचार किया है जो अन्याय किया है उसको कट्टरसे कट्टर हिन्दू समाज भी स्वीकार करता है। फिर भी ऐसे लोग हैं जो और बातोंमें उदार होनेपर भी इस मामलेमें दुराग्रहसे ऐसे अन्धे हो गये हैं कि वे ऐसे नीच गिने जानेवाले अपने देशवासियोंके प्रति किये गये अपने व्यवहारमें कोई अन्याय ही नहीं देखते हैं। एक महाशय यों लिखते हैं—

"मैं आपका एक बड़ा नम्र अनुयायी हूँ। परन्तु मैं आपका प्रथम वर्गका अनुयायी होनेका दावा नहीं करता। मैं बड़े दुःखके साथ इस बातको स्वीकार करता हूँ कि अस्पृश्यताके विषयमें मेरे दिलको आपकी तरह कोई चोट नहीं पहुँचती है। जो लोग यह कहते हैं कि अस्पृश्योंपर अत्याचार किया जाता है, उन्हें दबाया जाता है, उनसे मैं एक मत नहीं हो सकता हूँ। मैं आपके समक्ष यह बात पेश करना अपना फर्ज समझता हूँ कि वे अस्पृश्य कहे जानेवाले लोग पहले स्वतंत्रताका उपभोग करते थे और अच्छी हालतमें थे। यदि मैं पंचमाओंके भूतकाल और उनके वर्तमानकालके प्रति दृष्टिक्षेप करूँ तो मैं उनको उनकी जागृतिके लिए मुबारकवादी नहीं दे सकता हूँ क्योंकि उससे तो वे कहींके भी नहीं रहे हैं। नाममात्रकी शिक्षा और नौकरीके टुकड़ोंकी तृष्णाका ही वे अनुकरण कर रहे हैं और इससे वे और भी अधिक अस्पृश्य बन गये हैं। जो मनुष्य शारीरिक श्रमके कामोंको छोड़कर नौकरी या कोई अधिकारकी जगह लेता है वह चूल्हेमेंसे निकलकर भट्टीमें ही जाकर गिर पड़ते हैं। यही हम लोगोंका दुःखद अनुभव है। मुझे उन दिनोंका स्मरण है जब पंचमाको कुटुम्बका ही एक मनुष्य समझा जाता था और प्रतिमास उसकी आजीविका और कपड़ोंकी भी व्यवस्था की जाती थी। परन्तु अब ये सब बातें भूतकालकी हो गई हैं। बहुतसे अस्पृश्य विदेशियोंकी गुलामी करनेके लिए दूसरे देशोंमें चले गये हैं; अथवा वे १५) की शाही तनख्वाह पाकर फौजकी नौकरी करनेके लिए नौकरशाहीके अनजानमें ही हथियार बन गये हैं। मुझे भय है कि उन्हें दूसरी जातियोंके समान बनानेका, उनकी उन्नति करनेका आपका कार्य असफल होगा। स्वयं मेरा ख्याल तो यह है कि समाजमें उनकी उन्नति करनेके लिए बहुत कुछ किया जा सकता है। परन्तु यह कार्य कोई जादूकी तरह एक ही दिनमें नहीं किया जा सकता है। उन्हें शिक्षा देनेके लिये, उनके आर्थिक कष्टोंको दूर करनेके लिये, शराबखोरी, गोहत्या और मिट्टी खानेकी बदीको, जो उनमें सदियोंका पुराना रिवाज हो गया है और इसीके कारण हरएक गाँवमें उन्हें अलग एक बाड़ेमें रहना पड़ता है, दूर करनेके लिए हमें करोड़ों रुपये खर्च करने होंगे। यदि यह न किया जायगा और दूसरी जातिके लोगोंसे अस्पृश्योंका आलिंगन करनेको कहा जायगा तो उससे समाजकी अवनति होगी और जहाँतक मेरा ख्याल है आप भी उसे पसन्द न करेंगे।"

अस्पृश्योंको न छूनेमें ही अवनति है। मनुष्य यदि शराब पीता है, गोहत्या करता है और मिट्टी खाता है तो क्या हुआ? वह बेशक बुराई करता है, परन्तु वह उनसे जो कि छिपे हुए अधिक भयंकर पाप करते हैं, अधिक पापी नहीं है। इसलिए वह अस्पृश्य नहीं गिना जाना चाहिये क्योंकि गुप्त पाप करनेवाले पापीको समाज अस्पृश्य नहीं गिनता है। पापीका तिरस्कार नहीं करना चाहिये, परन्तु उनपर तो दया करनी चाहिये और उनको अपने पापोंसे मुक्ति प्राप्त करनेमें मदद करनी चाहिये। हिन्दुओंमें अस्पृश्यताका होना अहिंसाके उसी सिद्धान्तका इन्कार करना है जिसपर कि हमें अभिमान है। अस्पृश्योंमें जिन बुराइयोंके होनेके विषयमें लेखक शिकायत करते हैं उसकी जिम्मेदारी भी हमारे सिरपर है।

उनको उस मार्गसे विमुख करनेके लिए हमने क्या प्रयत्न किये हैं ? हमारे कुटुम्बके किसी व्यक्तिको सुधारनेके लिए हम क्या बहुतसे रुपये खर्च नहीं करते हैं । क्या अस्पृश्य हिन्दू समाजरूपी महान कुटुम्बका एक अंग नहीं है। निःसन्देह हिन्दू धर्म तो हमें यह उपदेश देता है कि सारी मनुष्य जातिको हम एक अविभक्त कुटुम्ब समझें और हममेंसे प्रत्येक मनुष्य हर एक मनुष्यकी की हुई बुराईके लिए अपनेको जिम्मेवार समझें। परन्तु यह संभव नहीं कि इस महान् सिद्धांतपर उसकी विशालताके कारण अमल किया जा सके तो हमें कमसे कम यह तो समझना चाहिये कि अस्पृश्योंको हम हिन्दू कहते हैं इसलिए वे और हम एक ही हैं।

और क्या मिट्टी खाना अधिक बुरा है या मिट्टीका विचार करना ? हम रोजाना करोड़ों अस्पृश्य विचार करते हैं, उन्हें अपने मनमें स्थान देते हैं और उसका पोषण करते हैं। हमें उसे दूर कर देना चाहिये क्योंकि वे ही सच्चे अस्पृश्य, तिरस्करणीय हैं और दूर कर देनेके योग्य हैं। हमें प्रेमसे अपने अस्पृश्य भाइयोंका आलिंगन करके उनके प्रति किये गये अन्यायका प्रायश्चित करना चाहिये। अस्पृश्योंके सेवा करनेके कर्तव्यके संबन्धमें लेखकने कोई शंका नहीं उठाई है। यदि उन्हें देखनेसे ही हमें बुरा मालूम हो और हम अपवित्र हो जाते हों, तो हम उनकी सेवा कैसे कर सकेंगे ?

हिन्दी-नवजीवन
१३ मई, १९२६



अस्पृश्यतारूपी रावण

किसी विद्वान पंडितजीने दक्षिणसे देशी भाषामें लिखकर भेजा है। अछूतपनके संबन्धमें उनकी जो दलीलें हैं, उसका सारांश एक मित्र यों लिखते हैं—

(१) आदि शंकराचार्यने किसी चाण्डालको दूर हटाया था और जब त्रिशंकुको चाण्डाल हो जानेका शाप मिला था तो सब कोई उससे बचे-बचे दूर ही रहते थे। ये बातें सिद्ध करती हैं कि अछूतपनेकी पैदाइश हालकी नहीं है।

(२) आर्य-जातिमें चाण्डालोंको जाति-बहिष्कृत गिनते थे।

(३) स्वयं अछूत भी तो इस अछूतपनेके दोषसे बरी (मुक्त) नहीं हैं।

(४) अछूतोंको तो हम अछूत इसलिए नहीं मानते हैं कि वे जानवर मारते हैं

और उन्हें हाड़, मांस, लहू, पायखाना, पेशाब तथा और-और तरहकी गन्दगियोंसे बराबर ही काम पड़ा करता है।

(५) अछूतोंको भी उसी प्रकारसे अलग रखना होगा जिस प्रकार कत्लखानों या कसाईखानों, शराब-ताड़ीकी दूकानों और वेश्यालयोंको दूर रखा जाता है वा रखा जाना चाहिये।

(६) उनके लिए तो यही काफी है कि परलोकके हक तो उन्हें प्राप्त हैं।

(७) गांधी ऐसे आदमी उन्हें भले ही छू सकें पर वे तो उपवास भी कर सकते हैं। हमलोगोंको न तो उपवास ही करना है और न उन्हें छूनेकी ही जरूरत है।

(८) मनुष्यकी उन्नतिके लिए अछूतपनेका माना जाना अत्यन्त ही आवश्यक है।

(९) मनुष्यके पास कुछ विद्युत शक्ति रहती है। यह शक्ति दूधके सदृश है। इसमें यदि बुरी चीजें मिला दो तो संभवतः वह शक्ति जाती रहेगी। इसलिए यदि कहीं प्याज और कस्तूरीको एक साथ मिलाकर रखना संभव होवे तो हम ब्राह्मण और अछूतको भी एकत्र मिला सकते हैं।

पत्र-लेखकने इन्हीं मुख्य-मुख्य बातोंका सारांश दिया है। अछूतपना हजार सिरोंवाला रावण है। इसलिए जब कभी यह अपना सिर उठावे तभी हमें कुचल देना होगा। हमारी आजकी स्थितिका उन कथाओंसे क्या लगाव है, यदि यह बातें हमें मालूम न होवें तो पुराणकी कुछ कथाएँ तो बहुत ही खतरनाक समझी जाँयगी। शास्त्रोंमें कही हुई यदि हरएक छोटीसी बातके अनुसार हम अपना जीवन बनायें वा उसमें वर्णित पात्रोंका हम ठीक-ठीक अनुकरण करने लगें तो ये शास्त्र ही हमारे लिए प्राणघातक सिद्ध होंगे। उनसे तो हमें केवल मुख्य-मुख्य सिद्धान्तकी बातें स्पष्ट करने या उन्हें ठीक समझनेमें सहायता मिलती है। यदि किसी धार्मिक ग्रंथमें लिखा है कि किसी प्रसिद्ध पुरुषने कोई पाप किया था तो क्या हमें भी पाप करनेकी आज्ञा उस ग्रन्थसे मिल गई? यदि केवल हमें एक बार ही कह दिया गया कि केवल सत्यकी ही इस संसारमें सत्ता है और सत्य परमेश्वरके तुल्य है, तो हमारे लिए इतना ही बहुत है। यह कहना अन्याययुक्त होगा कि युधिष्ठिरको भी झूठ बोलना पड़ा था, बल्कि उसकी अपेक्षा उपयुक्त बात यह होगी कि जब वे झूठ बोले, उन्हें उसी समय, उसी क्षण, कष्ट झेलना पड़ा था और उनके प्रसिद्ध और बड़े नाम सजा पानेके समय उनके कुछ काम न आये। उसी तरह हमारा यह कहना भी बे-मौके होगा कि आदि शंकराचार्यने अपने पाससे किसी चाण्डालको दूर हटा दिया था। हमें तो केवल यही जानना यथेष्ट होगा कि जिस धर्ममें यह सिखाया जाता है कि प्राणी-मात्रसे वैसा ही व्यवहार करो जैसा अपने साथ करते हो अर्थात् प्राणि-मात्रको

अपने ही समान समझो, उस धर्मको एक जीवके प्रति भी निष्ठुर व्यवहार असह्य है। बिल्कुल निर्दोष मनुष्योंके एक समाजकी तो बात ही दूर है। इसके अलावे हमें वे सब बातें मालूम भी तो नहीं हैं कि जिनसे हम जानें कि आदि शंकरने क्या किया था और क्या नहीं किया था। यहाँ 'चाण्डाल' शब्दका जिस अर्थमें प्रयोग हुआ है उसका तो हमें और भी कम ज्ञान है। यह तो सभी मानते हैं कि इसके अनेक अर्थ हैं जिनमें एक अर्थ है पापी। परन्तु सभी पापियोंक अछूत माना जाय तो यह भी भय होता है कि हम सब कोई, हमारे पण्डितजी भी नहीं बच सकेंगे, स्वयं वे भी अछूत बन जाँयगे। अछूतपनेकी प्राचीनताको किसीने कभी इन्कार नहीं किया है। परन्तु इसे दोष मानना है तो फिर प्राचीनताके नामपर इसका समर्थन नहीं किया जा सकता।

आर्य जातिने अछूतोंको यदि जाति-बहिष्कृत माना था तो उनके लिए यह कोई शोभाकी बात तो नहीं है और यदि आर्य जातिने अपने विकासके किसी कालमें कुछ लोगोंके समाजको बतौर सजाके जातिच्युत माना था तो अब फिर कोई कारण नहीं कि वह सजा उन लगोंके वंशजोंपर भी लागू होवे और इसका विचार भी न किया जाय कि किस दोषके लिए उनके पूर्वजोंको सजा दी गयी थी।

अछूतोंमें भी अछूतपनेका होना तो केवल यही सिद्ध करता है कि पापको हम बन्द करके नहीं रख सकते हैं बल्कि उसका जहर सर्वत्र ही फैल जाता है। इस अछूतपनेका अछूतोंमें भी पाया जाना तो इसका एक और कारण है कि सभ्य हिन्दू समाजको इस महाव्याधिका शीघ्रसे शीघ्र नाशकर देना चाहिये।

यदि अछूतोंका अछूतपन इस कारण है कि वे जानवर मारते हैं और उन्हें मांस, हाड़, लहू तथा पायखाना, पेशाब और गंदगियोंसे काम पड़ता है तो सभी डाक्टरों और दाइयों (परिचारिकाओं) को अछूत बन जाना चाहिये और क्रिस्तानों, मुसलमानों और बड़ी २ ऊँची जातिके नामवाले हिन्दुओंको भी जो खानेके लिए या बलि देनेके लिए जानवरोंको मारते हैं, अछूत बन जाना चाहिये।

इस दलीलसे तो घोर द्वेषकी गन्ध आती है कि चूंकि कसाईखानों, ताड़ीकी दुकानों और वेश्यालयोंको अलग रक्खा जाता है इसलिए अछूतोंको भी अलग रखना चाहिये। कसाईखानों और शराबकी दुकानोंको अलग रक्खा जाता है और रखना चाहिये ही, परन्तु कसाइयों और कलालोंको तो कोई अलग नहीं करता है। वेश्याओंको अलग रखना चाहिये क्योंकि उनका पेशा घृणित है और समाजकी उन्नतिके लिए बाधा स्वरूप है। परन्तु इधर अछूतोंका पेशा तो न केवल इष्ट ही है, बल्कि समाजके हितके लिए परमावश्यक है।

यह कहना तो गुस्ताखीकी हद है कि अछूतोंको परलोकके अधिकार

भी छीन लेना अपने ही हाथमें होता तो बहुत कुछ संभव है। यह तो पाप है। अछूतपनेकी राक्षसी प्रथाके समर्थक उनको वहाँ भी अलग छाँट देते।

यह कहना तो लोगोंकी आखोंमें धूल झोंकना है कि गांधी अछूतोंको छू सकता है परन्तु और-और लोग नहीं, मानों अछूतोंको छूना वा उनकी सेवा करना इतने बड़े दोष हैं कि जिसके लिए वैसे ही आदमियोंकी जरूरत है जो अछूत रूपी रोगाणुओंसे अपनेको बचा लेनेकी विशेष शक्ति रखते हैं। मुसलमानों, क्रिस्तानों तथा और लोगोंको जो छूतपनेको नहीं मानते हैं कौनसी नरक-यातना दी जायगी यह तो भगवान ही जाने।

शारीरिक चुम्बकत्वकी दलीलको तो उचितसे अधिक दूरतक खींचा गया है। ऊँची जातिके सब आदमी न तो कस्तूरीके ऐसे गन्धवाले हैं और न अछूत ही प्याजके ऐसे दुर्गन्धवाले हैं। ऐसे हजारों अछूत हैं जो अछूतपनेको नहीं मानते हैं और किसी भी ऊँची जातिके नामवालोंसे हजार गुने अच्छे हैं।

यह देखकर कष्ट होता है कि अछूतपनेके विरुद्ध पांच बरसोंके लगातार प्रचारके बाद भी आज कितने ही पढ़े लिखे विद्वान पुरुष मिलते हैं जो इस अनीतिमूलक और दूषित रिवाजका समर्थन करते हैं। विद्वानोंमें भी अस्पृश्यताके भावका रहना अस्पृश्यताको कोई प्रतिष्ठा नहीं दिला देता है बल्कि इससे तो हम निराश हो जाते हैं कि चारित्र्य और समझदारीकी केवल विद्यासे ही कुछ वृद्धि हो सकती है।

हिन्दी-नवजीवन
५ अगस्त, १९२६



अस्पृश्यता

इस सत्यानाशी प्रथाके विरुद्ध आपने हमेशा बहुत जोरोंसे लिखा है। इसके साथ ही; अगर मुझे जहाँ तक याद आता है, आपने यह भी लिखा है कि इस सुधारके साथ-साथ असवर्ण विवाह और सह-भोज भी कुछ आवश्यक नहीं है।

कृपा करके आप स्पष्ट लिखें कि इस सुधारमें यह भी शामिल है कि नहीं किसी अछूतका बनाया हुआ या उसके हाथका ही भोजन खाया जाय या कमसे कम उसके निकट बैठकर, अपनी ओरसे कोशिश करके नहीं किन्तु कमसे कम संयोगवशात् ऐसा अवसर आ पड़नेपर ही सही, खाया जाय। अगर ये बातें सही नहीं हैं तो यह भी बतलाना होगा कि

इन्हें क्यों न शामिल किया जाय। इस सुधारमें इन्हें शामिल करनेका निश्चित लक्ष्यार्थ यह होगा कि शारीरिक स्वच्छतासे जहाँतक संबंध है उन्हें हम नीच मानते हैं और जबतक वे गन्दे माने जाते हैं, तबतक सुसंस्कृत पुरुष भी अछूतपनके इस नाशका सुधार नहीं कर सकेंगे।

इस विषयमें मैंने जो कुछ कहा है, उसका अर्थ यही है कि पंचम वर्ग न रहने पावे। इसलिए अछूतोंको चौथे वर्णमें ही मिल जाना चाहिए। चार वर्णोंके संगठन और उनमें कृत्रिम ऊंचता नीचताको दूर करनेका सवाल दूसरे ही प्रकारके सुधारमें उठता है। सहभोजका अर्थ होता है एक ही थालीमें खाना। मैं अगर विष्णु सुलेमान एंड इस्माइल कंपनीका बनाया एक बिस्कुट खाता हूं तो इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं उनके साथ सहभोज करता हूं।

हिन्दी-नवजीवन
१४ अक्तूबर, १९२६



अन्त्यजोंका पूजाधिकार

नीमच छावनीसे एक भाई प्रश्न करते हैं—

"(१) अछूत जिनको उच्चवर्ण हिन्दू अतिशूद्र भी कहते हैं, विष्णु भगवानका मंदिर बनाने, विष्णुकी मूर्तिकी पूजा करने और मूर्तिको विमानमें बिठाकर सरे बाजार निकालनेके अधिकारी हैं या नहीं ?

(२) क्या अतिशूद्र पूजित विष्णुकी मूर्तिके दर्शन करनेसे वैष्णव नरकगामी होते हैं ?"

ऐसे प्रश्न अबतक पूछने पड़ते हैं, यही दुःखकी बात है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि अन्त्यज भाइयोंको विष्णु भगवानकी मूर्ति बाजारमें निकालनेका और विमानमें बिठानेका पूरा अधिकार है जितना अन्य जातियोंको है। इसी तरह जो वैष्णव अतिशूद्र पूजित मूर्तिकी पूजा करता है या दर्शन करता है, वह पाप नहीं परन्तु पुण्य करता है। जो वैष्णव जान बूझकर ऐसी मूर्तिकी पूजासे डरेगा वह वैष्णव धर्मकी निन्दा करता है।

हिन्दी-नवजीवन
४ नवम्बर, १९२६

अनोखे विचार

"ठीक उसी प्रकारसे जैसे हम लोगोंके ऐसे लोग आपके निकट जाने और छूनेमें डरते हैं क्योंकि आप साधारण आदमियोंसे ऊपर हैं, अपवित्रतासे रहने और खानेवाले अछूत भी साधारणः ऊँची जातिवालोंको, जिनसे यह उम्मीद की जाती है कि अछूतोंकी अपेक्षा वे अधिक शुद्ध जीवन बिताते होंगे, उनके स्वयं आगे बढ़नेपर भी छूना या उनके निकट जाना पसंद नहीं करते। अब इस स्थितिमें क्या आप यह नहीं सोचते कि आपके अछूतपनेके विरुद्ध प्रचार करनेसे, अछूतोंकी कायिक, वाचिक और मानसिक शुद्धि होनेके बदले, जो एक जन्ममें हो नहीं सकती, ऊँची जातिवाले दूसरे लोगोंकी और भी अवनति होगी क्योंकि उनलोगोंमें आपके जैसा ऊँचा चारित्र्य, अच्छे सिद्धांत और पक्का धर्मज्ञान नहीं है।"

किसी बोर्ड हाई स्कूलके शिक्षकोंका यह संयुक्त लेख है। इसलिए यह लेख बहुतोंके विचारका नमूना है और फेंक देने लायक नहीं है। मगर केवल इसी खूबीके कारण इसे मैं नहीं छापता। अस्पृश्यता और दूसरे सामाजिक और धार्मिक सुधारोंके विरुद्ध प्रगतिसे पढ़े लिखोंके भी कितने भद्दे और अनोखे विचार जाहिर हो रहे हैं। भद्दे अन्धविश्वासोंका शिक्षकोंने समर्थन किया है, उससे मालूम होता है कि विश्वास होनेसे ही किस प्रकार दलीलें मिल जाया करती हैं, और इसलिए किसी बड़े हलचलमें दलीलोंका कैसा छोटा स्थान होता है। यहाँ तो सिर्फ सुधारकके उदाहरणका ही असर पड़ता है। और जब वह उदाहरण गलतफहमी, निन्दा और दंडके सामने भी यहांतक कि मृत्युके सामने भी टिका रह जाता है तब उस सुधारका प्रचार शुरू होता है। अस्पृश्यता और दूसरी चीजोंके साथ भी यही बात होगी। लेकिन इन शिक्षकोंकी दलीलोंका भी हम कुछ देरतक विचार करें।

पहली बातमें तो उन्होंने बहुत ही बेमौके उपमा ढूँढी है। मुझे इसका पता नहीं कि लोग मुझे छूते या मेरे पास आते डरते हों। इसके उलटे जब कभी मैं दौरेपर निकलता हूँ, तो लोगोंकी भीड़की मेरी बहुत अधिक खातिरदारी और मुझे छूनेकी जिदसे मैं घबरा जाता हूँ। मुझे वे स्नान करते समय भी अकेले न छोड़ेंगे। दूसरे अगर हमारे अछूत देशवासी, ऊँची जातिवालोंको छूनेसे डरते हैं, तो इसका कारण उनकी कुछ अधिक शुद्धता नहीं है बल्कि यह है कि उन्हें उन लोगोंको न छूनेकी ही शिक्षा दी गयी है और उन्हें मालूम है कि छूनेकी कोशिश करनेसे गाली खानी पड़ेगी या उससे भी बुरा सलूक संभव है।

तीसरे चारित्र्यके संबंधमें अछूतोंकी निम्नता, अकारण ही मान ली गयी

है। अगर सारे समाजको लेकर देखा जाय तो सच्चाई, शुद्धता, और दूसरे सार्वजनिक या खानगी गुणोंमें, जिन्हें दूसरोंके ऐसा पूरा-पूरा दिखलानेका उन्हें सुयोग मिला है, वे किसीसे पीछे न होंगे।

ऐसी बहस करके कि इन नामधारी ऊँची जातिवालोंके बराबर पहुँचनेके लिए इन लोगोंको कई जन्म लेने पड़ेंगे, पुनर्जन्मके सिद्धान्तका दुरुपयोग किया जाता है। गीता हमें सिखलाती है कि इसी जन्ममें किसी विद्वान पंडितके समान, एक अछूतको भी मुक्तिके बराबर ही साधन प्राप्त हैं। ऊँची जातिवाले अगर सचमुचमें ही ऊँचे हैं तो उन्हें अछूतोंसे मिलनेमें डरनेका कोई कारण नहीं है। क्योंकि ऐसा होनेसे ऊँची जातिवालोंका तो कुछ बिगड़ेगा नहीं और अछूतोंको उनके साथसे बड़ा लाभ पहुंचेगा, और विशेषकर उस हालतमें जब वे अछूतोंसे सेवाका भाव लेकर मिलें, न कि साथके लिए। साथमें गुण और दुर्गुणका दोनोंमें परस्पर आदान-प्रदान चलता है। किसी शराबखानेमें भी जानेसे मैं अपवित्र नहीं हो जाता हूँ अगर मैं सुधारक बनकर इस नियतसे जाता हूँ कि शराबीकी बुरी आदत उससे छुड़ाऊँ, मगर अगर मैं एक दोस्तका सिर्फ साथ देनेके लिए, और वहाँके प्रलोभनोंसे बचनेके लिए पहलेसे बिना कुछ सोचे-बिचारे जाऊँ तो जरूर ही अपवित्र हो जाऊँगा।

शिक्षकोंकी चारित्र्य पर आहारके प्रभावकी दलील भी ऐसी ही अनोखी है। चूँकि मैं खुद भोजन सुधारक हूँ इसलिये बहुत मित्र भोजनके सुधार और उसे जहाँतक सादा हो सके बनानेके उत्साहमें मुझे आधा पागल-सा समझते हैं। मगर मैं जानता हूँ कि ये शिक्षक भोजनपर और चारित्र्यके ऊपर उसके प्रभावपर बेहिसाब जोर दे रहे हैं। और अगर तबतक सब सार्वजनिक कार्य बन्द रखे जायं जबतक ऐसे कार्यकर्त्ता नहीं मिलते जो सभी प्रकारका खट्टा-मीठा न खायँ और एक अपरिवर्तनीय नियमके अनुसार चलें तो कोई सार्वजनिक काम ही नहीं होगा। कार्यकर्ताओंके सादे काम अनुत्तेजक आहारके लाभ ही बतलाते जा सकते हैं। मगर जबतक यह सुधार हो नहीं लेता तबतकके लिये सब सार्वजनिक काम बन्द रखनेका किसको साहस हो सकता है? उस बुरी आदतसे जिसके कारण हम धर्म और चारित्र्यकी जाँच आहारपर करते हैं सच्चे धार्मिक भावके उदयमें बड़ी बाधा पहुँचती है। ये लायक उस्ताद लोग उस विवाह सुधारकी जिसे बहुत दिन पहले ही शुरु हो जाना चाहिये था, तबतक बन्द रक्खेंगे जबतक लोग उनके मन मुआफिक सात्विक आहार शुरु न करें। इस शब्द सात्विक आहारका चाहे उसके कुछ अर्थ होवे मगर इसमें कुछ शक नहीं कि आत्मसंयम और आहारमें बड़ा महत्वपूर्ण संबंध है। इसके साथ इस बातके भी अनेक उदाहरण मिलते हैं जब साधारण भोजन करनेवालोंने भी आत्मसंयमकी आदत रक्खी है। जो लोग आत्मसंयमके अभ्यासी हैं वे स्वयं

अपने लिये, आहार संयमकी सीमा निश्चित कर लेवें। इसलिये और दूसरे सुधारोंके लिये आहार सुधारकी परमावश्यक शर्त बनाना गलत होगा।

बाल विवाहके कठोर चालको हटानेके संबंधमें ये शिक्षक याद रक्खें कि ऐसे भी लोग हैं, जिन्हें सादासे सादा आहार करनेपर भी अपनी वासनाओंका दमन करना बहुत कठिन होता है। सब करने और कहनेके बाद भी तो मन मन ही है। स्वर्गको भी नरक और नरकको भी स्वर्ग बना सकता है। इसके अलावा, स्त्रियोंकी शुद्धताके विषयमें इस अपवित्र चिंताकी जरूरत ही क्या है? पुरुषोंकी सुचरित्रताके लिये स्त्रियोंके चिंताकी बात तो कभी सुनी नहीं गई। तब पुरुष ही क्यों स्त्रियोंकी पवित्रताका ठेका लेनेका दुःसाहस करें? बाहरसे तो पवित्रता लादी नहीं जा सकती। यह तो आंतरिक विकासकी बात है और इसलिए हर आदमीकी अपनी व्यक्तिगत चेष्टापर निर्भर है।

योग और अहिंसाके अभ्यासके संबंधमें इन शिक्षकोंके दिये हुए, इन गुणोंके अभ्यासियोंके दावेका मैं समर्थन नहीं कर सकता। उनमें जो सबसे बढ़े हुए हैं, वे लोग भी प्रकृतिके अचल अटल नियमोंके विरुद्ध नहीं जा सकते। वे प्रकृतिके नियमोंसे वैसे ही जकड़े हुए हैं जैसे हम सब लोग। स्वयं परमात्माने अपने ही नियमोंमें परिवर्तन करनेका अधिकार आप बचा नहीं रक्खा है और किसी ऐसे परिवर्तनकी जरूरत थी नहीं है। वह सर्वशक्तिमान है, सर्वज्ञ है, वह एक साथ ही बिना किसी मेहनतके भूत, भविष्य और वर्तमान कालको जानता है। इसलिए उसे फिर न कुछ विचार है, न दुहराना है, न बदलना है न सुधारना है।

अहिंसक योगाभ्यासी लोगोंको बेशक कुछ शक्तियाँ आ जाती हैं। मगर ये सब प्राकृतिक नियमोंके भीतर ही। मैं कोई योगाभ्यास नहीं करता क्योंकि पहले तो मुझे उसके बिना भी आंतरिक शांति प्राप्त है (हाँ, शायद मेरा अपनी वर्तमान स्थितिपर ही संतोष करना गलत होवे) और दूसरे मुझे वैसा कोई आदमी नहीं मिला जिसपर मैं पूरा-पूरा विश्वास कर सकूँ और वह मुझे समुचित योगाभ्यास सिखला सके।

गाँवोंके संबंधमें—मेरे कई सहकारी गावोंमें अभी काम कर रहे हैं। मगर मैं कबूल करता हूँ कि यह मुश्किल काम है। मैं मानता हूँ कि सिर्फ इस लिये कि उनकी ऐसी इच्छा है, सब किसीके लिये गांवोंमें आ बसना संभव नहीं है।

हिन्दी-नवजीवन
२५ नवम्बर, १९२५

❀

अस्पृश्यताओंकी तुलना

वर्धामें रहते समय मुझे अछूतोंके मुहल्लोंको देखनेका अवसर मिला था। उनके बाशिंदे सुखी मालूम पड़ते थे किंतु जो जागृति हो चुकी है उसके कारण अस्पृश्यता-निवारणके आंदोलनकी धीमी चालसे वे असंतुष्ट हैं। उन्हें इस बातका रंज है कि अब भी साधारणतः मंदिरों, कुओं या स्कूलोंका व्यवहार उन्हें नहीं करने दिया जाता। वे यह समझ ही नहीं सकते, समझेंगे भी नहीं कि प्रगति लंगड़ी होती है और इसलिये बहुत धीमी। वे इसकी कोई वजह नहीं देख सकते, कोई है भी नहीं कि उन्हें भी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं, वे झेलनी ही पड़ें।

इस मनोरंजक सैरके दो दिनों बाद मुझे मालूम हुआ कि जमनालालजीकी कोशिशोंकी बदौलत और जगहोंसे वर्धाके अछूत अधिक सुखी हैं। वहाँके कई सार्वजनिक कुओंसे पानी ले सकते हैं। म्युनिस्पल स्कूलमें बिना रोक टोक भर्ती किये जा सकते हैं। अनाथालयमें अछूत और बे-अछूत अनाथोंमें कोई अंतर नहीं माना जाता, पानीके सार्वजनिक नलोंसे उन्हें पानी लेने दिया जाता है और उनके विरुद्ध पक्षपातकी दीवाल तोड़नेकी कोशिश की जाती है।

जिस समय अछूत भाइयोंकी विचारधाराओंके अनुभव मुझे हो रहे थे उसी समय मुझे दक्षिण अफ्रीकाकी अस्पृश्यताकी घटनायें याद करनी ही पड़ीं। इस समय वहाँ गोलमेज कान्फ्रेंस विचार कर रही है, उसके ख्यालसे मुझे ऐसा करना ही पड़ा। यहाँ हिन्दुस्तानी अस्पृश्यताके लिये हमलोग उत्तरदायी हैं, और दक्षिण अफ्रीकामें हमीं उसके शिकार हैं। यहाँ तो जालिमके ऊपर ही जुल्म वाली बात दुहराई गई है। जैसा हम हिन्दुस्तानमें करते हैं, उसका बदला हमें दक्षिण अफ्रीकामें सूद सहित मिलता है।

अब कान्फ्रेंस यह विचार कर रही है कि इसका उपाय क्या है। सुफलकी प्राप्तिके लिये ऐन्ड्रयूज भगीरथ प्रयत्न कर रहे हैं। उन्होंने दक्षिण अफ्रीकाकी पवित्रतम शक्तियोंको इसके पक्षमें किया।

खैर, दोनों प्रकारकी अस्पृश्यताओंके अंतरपर हम विचार करें। हिन्दुस्तानकी अस्पृश्यता घड़ियां गिन रही है। उसकी जड़पर कुल्हाड़ी लग चुकी है। शिक्षित समाज उसके विरुद्ध है। कोई भी प्रभावशाली पुरुष उसका समर्थन नहीं करता। अछूतोंको बांध रखनेवाली जंजीरें तड़ातड़ टूटती जा रही हैं। कानून उसे सह्य नहीं करता। यह जो कुछ बचा है, रस्मोरिवाजके कारण। रिवाज जल्दी बदलते नहीं, कानूनका सहारा न रहनेपर भी वे जीते ही जाते हैं और खासकर

अगर वे पुराने रिवाज हुए। हिन्दुस्तानकी अस्पृश्यता अब समय पाकर आप ही आप दूर हो जायगी।

दूसरी ओर दक्षिण अफ्रीकावाली दिनपर दिन जड़ पकड़ती जाती है। इसे दिनपर दिन कानूनकी अधिकाधिक सहायता मिलती जाती है। सन् १९१४ ई० के आखिरी समझौतेके बाद सन् १९१५ से अबतक, यूनियन पार्लियामेंटकी हर बैठकमें दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानी अछूतोंकी कानूनी कठिनाइयाँ बढ़ती ही गयी हैं। ब्रिटिश साम्राज्यके और हिस्सोंमें भी यह रोग फैलता जा रहा है, जैसा कि केनियाकी हालतसे साफ मालूम पड़ता है।

इन्हीं बढ़ती हुई बुराइयोंके विरुद्ध दक्षिणी अफ्रीकामें ऐन्ड्रयूज करीब-करीब अकेले ही लोहा लिये हुए हैं। आइये, हम आशा करें कि उनकी मिहनत सफल होगी।

किंतु बेशक इस बुराईका सामना करनेका सबसे अच्छा तरीका है, हिन्दुस्तानमें पहले हमीं उससे बरी हो जायँ। दक्षिण अफ्रीकाके डेपुटेशनके मेम्बरोंके मुँहसे यह बात अनेक बार सुननेमें आयी है कि पहले हम अपने घरमें तो चिराग जला लेवें फिर दक्षिणका अफ्रीकाका भी अंधेरा मिटानेका समय मिलता रहेगा। शायद वे भूल गये थे, या उन्हें मालूम ही नहीं था कि यहाँ हमलोगोंके साथ, अछूतोंपर कोई कानूनी बंधेज नहीं है। मगर दूसरोंसे न्याय मांगते समय, इस तरहकी दलील पेश करना हमें शोभेगा नहीं। कानूनका एक बहुत अच्छा सिद्धांत है जो हमारे मुआमलेपर लागू होगा है। 'जो दूसरोंसे न्यायकी चाह रखते हैं उन्हें आप बेदाग होना चाहिये' इसलिये दक्षिण अफ्रीकाकी अस्पृश्यताके विरुद्ध जो सबसे अच्छी दलील हम तैयार कर सकते हैं, वह है पहले अपने ऐबको दूर कर लेना। तबतकके लिये जो कुछ आराम गोलमेज सभा दिला सके, उसीपर हमें संतोष करना पड़ेगा।

इस सवालका एक दूसरा पहलू भी है। अछूतोंको भी कुछ न कुछ हम लोगोंका और हिन्दुस्तानका ऋण चुकाना पड़ेगा। किन्तु इस दूसरे पहलूका विचार किसी दूसरे ही लेखमें करना होगा।

हिन्दी-नवजीवन
३० दिसंबर, १९२६



अस्पृश्यताकी गुत्थियां

भाई गोविंददास जादवदास (गोविंद भाई ढेड़ जातीके हैं) ने एक पत्र भेजा है। उसका मतलब यह है कि अगर अस्पृश्यताको दूर करना है तो फिर अस्पृश्योंके लिये अलग स्कूल, मन्दिर, कुएं क्यों बनें? यह दलील यों ही छोड़ देने लायक तो है ही नहीं। दक्षिण अफ्रीकामें ऐसा ही सवाल उठा था और अब भी उठता है। वहाँ हिन्दुस्तानियोंके लिये अलग स्कूल खोलनेका अर्थ है उनकी अस्पृश्यताकी आयु बढ़ाना। यह दलील खुद मैंने की है। जिसके पांवमें बिवाय फटती है वही बिवायका दर्द समझता है। इस न्यायसे भाई गोविंदजीका दुःख मैं समझ सकता हूं।

किंतु जहाँ मैंने देखा कि जो चीज है ही, उसकी हस्तीको न मानकर चलना ही मूर्खता है वहाँ मैंने भेदका अस्तित्व जान समझकर ही अपना काम किया है। इसलिये वहाँ मैंने अलग स्कूलोंकी बात स्वीकार कर ली। वहाँ रेलगाड़ियोंमें हिन्दुस्तानियोंके लिये दूसरे और पहले दर्जेके डब्बे अलग रखनेकी बात भी स्वीकार कर ली। जैसे गोविंद भाई उसका विरोध करते हैं वैसे मैंने भी किया। किंतु जहाँ जातिके अस्तित्व ही मिट जानेका भय पैदा हुआ, वहाँ मैंने वैसे भेदको स्वीकार किया जो भेदमें भी हलकासे हलका भेद हो। जैसा कि पहले हिन्दुस्तानी लोग केवल तीसरे दर्जेमें ही मुसाफिरी कर सकते थे। आंदोलनके अंतमें उनके लिये दूसरे और पहले दर्जेके भी टिकट काटनेका हुक्म हुआ। किंतु उसके साथ ही हिन्दुस्तानियोंके लिये पहले-दूसरे दर्जेकी गाड़ियाँ रखनेको ठहरा। विरोध किया किंतु अंतमें हमने इतना भेद स्वीकार कर लिया। राजसत्ता सुभीता कर दे सकती है किंतु हमारे साथ बैठनेपर दूसरोंको लाचार क्यों कर सकती है?

ऐसी विचारसरणीके अनुसार ऐसा निश्चय ऊपर आया कि जबतक अंत्यज सामान्य मंदिरोंका उपयोग न कर सकें तबतक उन्हें मंदिर इत्यादिका उपयोग ही न मिले, इसकी अपेक्षा यही अच्छा है कि उनके लिये अलग संस्थायें बनें, और उन्हें उनका उपयोग मिले। वातावरणमेंसे तो अब अस्पृश्यता चली गई है तो भी बहुत लोग अभी उसे अपने व्यवहारसे दूर करनेको तैयार नहीं हुए हैं जबतक यह स्थिति है तबतक अंत्यजोंके जो मित्र हैं वे क्या करें? उनकी शुद्धिका सबूत किस प्रकार देवें? जवाब यही होगा कि अंत्यजोंके लिये मंदिर, इत्यादि बनाकर।

भाई गोविंदजी कहते हैं कि ऐसे मंदिर वगैरह भले ही बनें किंतु 'अंत्यजोंके लिये' यह विशेषण उन्हें क्यों दिया जाय? ऐसे विशेषण कोई देता ही नहीं है। जो मंदिर इधर हालमें बन रहे हैं, उनका उपयोग उनके बनानेवाले और अंत्यजोंके

दूसरे मित्र तो करते ही हैं। इस दृष्टिसे अंत्यजोंके निमित्त बनायी गई संस्थायें सार्वजनिक हैं। किंतु उसपर पहला हक्क है अंत्यजोंका। उनके उपयोगमें पहला विचार अंत्यजोंका होता है। और सबसे पहले उनकी सुविधा देखी जाती है।

अगर भाई गोविंदजी जैसे अंत्यज भाइयोंका मैं दुःख समझ सका हूं तो मैं उन्हें कहता हूं कि वे मानें कि मंदिर वगैरह बनानेका आंदोलन पवित्र, स्तुत्य और अंत्यजोंको लाभदायी है।

हिन्दी-नवजीवन
२० जनवरी, १९२७



अस्पृश्यता, स्त्रियाँ और स्वराज्य

श्रीमती सुहासिनी देवीका पत्र मैं खुशीसे छापता हूं। महासभाके बहुज्ञ सभापति अपना बचाव करनेमें आप समर्थ हैं परंतु मुझे ऐसा ख्याल होता है कि इस बहिनने अपने थोड़ेसे अनुभवपरसे ही बहुतसे अधिक व्यापक नियम निकाले हैं। अछूतोद्धारके आंदोलनकी बड़ी प्रगति सिद्ध करनेके लिए आंकड़ोंकी जरूरत नहीं है। यह दीवार हर जगह टूट रही है। हर सूबेमें ऊँची श्रेणीके लोग दलित जातिके लड़कोंकी सेवाके लिये स्कूल, छात्रालय आदि चलाकर उनकी सेवा करते हुए मिलते हैं। सभापति महोदयने अपने भाषणमें जब इसका जिक्र किया तब स्पष्टतः यही बात उनके ध्यानमें थी। खैर मगर जो कुछ अभी तक हो सका है, उससे लाख गुना और करना बाकी है। स्त्रियोंके दुराग्रहको दूर करना सबसे कठिन काम है। सच पूछो तो यह स्त्री शिक्षाका सवाल है। और इस विषयमें यह सवाल केवल लड़कियोंकी ही शिक्षाका नहीं है बल्कि विवाहिता स्त्रियोंकी शिक्षाका है। इसलिये मैंने यह बात बार-बार सुझाई है कि हर एक देश-भक्त पतिको अपनी पत्नीका शिक्षक बन जाना चाहिये और उसे अपनी दूसरी कम नसीब बहनोंमें काम करनेके लायक बनाना चाहिये। मैंने इस सलाहके रहस्योंकी ओर भी ध्यान खींचा है। पत्नीको केवल विलास-सामग्री न समझकर राष्ट्रोत्थानके काममें अपना सहकारी समझना भी उन्हींमेंसे एक है। सीताके बिना हमें राम नहीं मिल सकते। वनवास और साधनाके भयंकर वर्षोंमें रामकी स्नेहमयी छायाके तले सीताकी सच्ची शिक्षा हुई। खैर अपने ही देशमें हम सब लोग देश-निकलेसे हैं और यथा शक्ति और यथावसर हमें राम सीताका ही अनुकरण करनेकी जरूरत है।

इस विषयमें श्रीमती सुहासिनीदेवीका इस ओर ध्यान दिलाये बिना मैं नहीं रह सकता कि श्रीयुत ऐयंगरने अस्पृश्यताका बंधनन सिर्फ अपने ही लिये तोड़ा है बल्कि अपने साथ वे अपनी स्त्री और परिवारको भी ले चल सके हैं। यही सुधार दस वर्ष पहले स्वयं उन्हींको असंभव मालूम होता।

सहभोज और अस्पृश्यताके सवाल अलग ही अलग रखने होंगे। खाने पीनेके मुआमलेमें अलग-अलग रहनेकी नीति सारे हिन्दू समाजमें घुसी हुई है। अब अस्पृश्यतामें और इसमें अंतर न रखनेसे अछूतोद्धारके आंदोलनकी गति रुकेगी। किसी दूसरे मनुष्यके बराबर ही, उन्हीं शर्तोंपर अछूतोंके भी सामाजिक अधिकार पानेमें जो बाधायें हैं उन्हें दूर करना इस आंदोलनका उद्देश्य है।

स्वराज्यके विषयमें भी कुछ अस्पष्ट ज्ञान है। स्वराज्य शब्दके कई अर्थ हैं। जब श्रीयुत ऐयंगर कहते हैं कि अस्पृश्यताके दूर होनेसे स्वराज्यका कोई संबंध नहीं है तो मैं मानता हूँ कि उनका मतलब है कि अस्पृश्यताका रहना शासनाधिकार की प्रगतिका बाधक नहीं हो सकता। द्वैतशासन या धारा-सभाओंको अधिक अधिकार दिए जानेके सवालोंसे तो निश्चय ही इसका कुछ लेना देना नहीं है। अस्पृश्यताको दूर करना होगा। सामाजिक प्रश्न है जिसे हिन्दुओंको हल करना इसके कारण हिन्दुओंको और साथ-साथ मुसलमानों और पारसियोंको भी सैनिक खर्चका नियंत्रण करने या विनिमय दर ठीक करने या शराबकी बिक्री कतई बंद करने, या स्वदेशी उद्योगोंकी रक्षाके लिये विदेशी मालपर चुंगी लगानेके अधिकार क्यों न मिले? सच्चा जीवन्त स्वराज्य तो एक मुश्किल सवाल है। साधारणतः लोगोंके दिलोंमें स्वराज्यके साथ जिस स्वतंत्रताकी भावना मिली हुई है वह तो न सिर्फ अछूतोद्धार और भिन्न-भिन्न संप्रदायोंमें हार्दिक ऐक्यके बिना ही असंभव है बल्कि और भी कई दूसरे सहज ही दिखाई पड़नेवाले सामाजिक दोषोंको भी दूर किये बिना असंभव है। इस व्यापक शब्द स्वराज्यका अर्थ हमलोगोंने समझ लिया है, निरंतर आंतरिक विकास। और जबतक इस विकासके शुभ पौधेको पक्षपात मनोविकार और अंध-विश्वासकी दीवारें घेरी हुई हैं, वह उग नहीं सकता।

हिन्दी-नवजीवन
१० मार्च, १९२७



अस्पृश्यता और अविवेक

महाड़के एक संवाददाता लिखते हैं—

"आपको यह लिखते हुए मुझे बहुत दुःख होता है कि गत २० मार्चको महाड़में स्पृश्य और अस्पृश्य जातियोंके बीच एक दंगा हो गया। घटना यों हुई। गत १९ और २० मार्चको कुलाबा जिलेकी दलित जातियोंकी एक परिषद थी। परिषद बड़ी सफल रही। पर जब अंतमें परिषद समाप्त हुई और लोग इधर-उधर जाने लगे, तब बंबईके समाज सेवा-संघके कार्यकर्त्ता श्री चित्रेने लोगोंसे जो प्यासे थे कहा कि चूंकि धूप बहुत तेज है, सामाजिक जलाशयपर जाकर अपनी प्यास बुझा सकते हैं। पर वहाँ कुछ ऐसे लोग थे जो इन लोगोंको वहाँ जानेसे मना करने लगे। तब डाक्टर अम्बेडकरने लोगोंको जलाशय पर ले जानेका निश्चय कर लिया। स्वयं पुलिस इन्स्पेक्टरको भी इस बातकी कल्पना नहीं थी कि बात इतनी बढ़ जायगी। अतः भीड़को रोकनेके बदले वे भी उसके साथ हो लिये। जलाशय ब्राह्मण मुहल्लेके बीचमें था। किसीको पता नहीं था कि अस्पृश्योंकी यह भीड़ तालाबपर जा रही है। इसलिये वहाँ किसीने आपत्ति नहीं की। सैकड़ों अस्पृश्य तालाबमें उतरे और 'हर हर महादेव' का घोष करते हुए उन्होंने अपनी प्यासको बुझाया। तबतक स्पृश्य जातियोंके लोग भी वहाँ आ पहुँचे। और लाल-लाल आँखे करके यह देखने लगे। तृषा शांत होते ही अंत्यज तो अपने सभामंडपमें भोजनके लिये चल दिये। पर एक घंटेके भीतर ही "गुरव" "गुरव" की चिल्लाहटसे सारा गाँव खड़बड़ा उठा। लोगोंसे किसीने कह दिया कि अंत्यज वीरेश्वरकी मंदिरमें घुसनेका विचार कर रहे हैं। यह सरासर झूठी अफवाह थी। पर बातकी बातमें क्रोधसे जलते हु स्पृश्य लोगोंका झुंड हाथोंमें लाठियाँ लेकर मंदिरमें इकठ्ठा हो गया। बिचारे अंत्यजोंके दिमागमें तो मंदिरमें जानेकी बात भी नहीं आयी थी। जब मंदिरवाले लोगोंने देखा कि अंत्यज मंदिरमें नहीं घुस रहे हैं, तो वे मारे क्रोधके पागलसे हो गये। वे बाजारमें गये और राहमें जहाँ कहीं उन्हें कोई अंत्यज मिला उसे पीटना शुरू कर दिया। यह मारपीट इतनी देरसे हो रही थी पर एक भी अंत्यजने इसका प्रतिकार नहीं किया। कुछ स्पृश्य जातिके लोगोंने जो अस्पृश्योंसे सहानुभूति रखते थे, उन्हें बचानेकी कोशिश की। पर वह झुंड तो पागल हो गया था। चमार और मोचियोंके झोपड़ोंमें घुस-घुस कर उन्हें भी इन लोगोंने बेरहम पीटा। बेचारे अंत्यज रोते-चिल्लाते सहायता मांगते हुए इधर-उधर दौड़ने लगे। पर एक भी दुकानदारने उन्हें आश्रय नहीं दिया। सभामंडपमें कोई १५०० अस्पृश्य थे। और स्पृश्य जातिके कुछ लोग उन्हें अपने भाइयोंकी सहायताके लिये न दौड़ जानेके कारण धिक्कार भी रहे थे। यदि वे सचमुच मैदानमें हो जाते तो वह एक महा भयंकर कांड हो जाता और हिन्दू धर्मपर एक कलंकका टीका लग जाता। डा० अम्बेडकरने अपनी सलाहके समर्थनमें यह कहा कि बंबईकी धारा सभामें इस विषयमें प्रस्ताव पास हो चुका है, और यह भी बताया कि महाड़की म्युनिसपल कमेटी इस विषयमें अपना मत जाहिर कर चुकी है कि अंत्यज सार्वजनिक तालाबों तथा कुओंसे पानी ले सकते हैं।"

संवाददाताके पत्रसे मैंने कई हिस्सोंको छोड़ दिया है जिनमें विशेष तफसीलकी बातें लिखी हुई थीं। पत्रमें लिखी बातें मुझे सच्ची मालूम होती हैं। उसमें अत्युक्ति नहीं दिखाई देती। अतः यदि हम मान लें कि घटनाका ब्यौरा ठीक है, तो इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि उच्च कहानेवाले वर्गोंने ऐसा गैर-कानूनी बर्ताव किया जिसके लिये उन्हें उसकाया नहीं गया था। क्योंकि हमें स्मरण रखना चाहिये कि अंत्यजोंके तालाबपर पानी पी लेनेके कारण ही, द्विजजातियोंके झुंड मंदिरमें इकट्ठा नहीं हुए थे। इसका कारण तो था वह अफवाह, जिसमें कहा गया था कि अंत्यज मंदिरमें घुसना चाहते हैं। पर अविवेकके साथ-साथ विचारशीलता शायद ही कभी पाई जाती है। अस्पृश्यता स्वयं ही अविचार पूर्ण वस्तु है। वह तो एक अमानुष संस्था है जो अब विनाशके मार्गपर है। भले ही कट्टर मतावलम्बी अपने पशुबलसे उसकी चाहे कितनी ही हिमायत करें।

इस कठिन प्रसंगपर अस्पृश्य कहे जानेवाले भाइयोंने जिस संयमसे काम लिया वह सचमुच अनुकरणीय है। और उनके इस व्यवहारने हमें इस जटिल सवालको हल करनेमें एक कदम आगे बढ़ा दिया है। यदि उन्होंने इसका बदला चुका दिया होता तो दोषारोपणका काम शायद कठिन हो जाता। पर इस परिस्थितिमें तो सारा दोष उन स्पृश्य जातियोंके सिर पर ही है। पशु-बल अस्पृश्यताकी रक्षा नहीं कर सकता। इससे तो उलटे अस्पृश्योंके पक्षमें लोक हृदय हो जायगा। यह समयका प्रताप है कि कमसे कम कुछ लोग तो ऐसे निकले जो गरीब अंत्यजोंका पक्ष लेकर उनकी रक्षाके लिये प्रयत्नशील हुए। क्या ही अच्छा होता यदि महाड़में इससे कहीं अधिक लोग अस्पृश्योंके अभिभावक होते। ऐसे मौकोंपर मूक सहानुभूति अधिक उपयोगी नहीं होती। प्रत्येक हिन्दूको, जो अस्पृश्यता निवारणको एक महत्वपूर्ण कर्तव्य समझता है, चाहिए कि वह ऐसे मौकों पर खुलेआम दीन-दलितोंका पक्षकर उनके प्रति अपनी सहानुभूतिको व्यक्त करे परवाह नहीं यदि यह पुण्य कार्य करते हुए उसका सिर भी फूट जाय। डाक्टर अम्बेडकरने अंत्यजोंको तालाबपर पानी पीनेका सलाह देकर, बंबई धारासभाके प्रस्तावको तथा महाड़ म्युनिस्पल कमेटीके मतको कार्यमें परिणत करके उसे जो कसौटीपर चढ़ाया, यह मेरी मतिमें तो बिल्कुल उचित ही जान पड़ता है। हिन्दू सभा जैसी इन सुधारोंमें दिलचस्पी लेनेवाली संस्थाओंको ऐसे एक भी मौकेको बेकाम नहीं जाने देना चाहिए। मेरे संवाददाताकी लिखी बातोंकी वे जांच-पड़ताल करें, और यदि वे ठीक हों तो वे स्पृश्य जातिके कार्योंकी निन्दा करें। अस्पृश्यता जैसी बुराईको जड़से उखाड़नेके लिए सुशिक्षित लोकमतके समान शक्तिशाली कोई उपाय नहीं है।

हिन्दी-नवजीवन
२८ अप्रैल, १९२७

घोर अमानुषता

पाठक अन्यत्र एक डाक्टरकी घोर अमानुषताकी हाल पढ़ेंगे जो उसने काठियावाड़के एक गाँवमें रहनेवाले अंत्यजकी पत्नीके प्रति दिखाई है। श्रीयुत अमृतलाल ठक्करने, जिन्होंने इस मामलेकी तफसील 'नवजीवन'में प्रकाशनार्थ भेजी थी, उस स्थान और व्यक्तियोंके नाम इस ख्यालसे जानबूझ कर छोड़ दिये हैं कि प्रकट करनेसे कहीं वह अंत्यज स्कूल-मास्टर उस डाक्टरके द्वारा अधिक न सताया जाय। पर मैं तो चाहता हूँ कि नाम प्रकाशित कर दिये जाने चाहिये। ऐसा समय भी आवेगा जब हमें अंत्यजोंको अधिक कष्ट और अत्याचार सहनेके लिये उत्साहित करना होगा। उन्हें तो पहले ही से इतने अधिक कष्ट हैं कि कुछ और कष्ट बढ़ जावें तो उनके लिये वे असह्य नहीं होंगे। ऐसे अत्याचारोंपर लोकमतको जागृत नहीं किया जा सकता, जिनको साबित नहीं किया जा सकता हो, या जिनकी तहतक हम नहीं पहुँच सकते हों। मैं बंबईकी मेडिकल कौंसिलके नियम तो नहीं जानता, पर अन्य स्थानोंपर ऐसे पेशावाज डाक्टरका नाम, जो फीस लेनेसे पहले मरीजकी सुश्रूषा करनेसे इन्कार करता है, कौंसिलके सदस्योंकी फिहरिस्तसे हटा लिया जाता है, परंतु मरीजोंका ठीक-ठीक तरहसे इलाज करना एक डाक्टर या वैद्यका सबसे पहला कर्तव्य है। परंतु यदि घटनाका वर्णन ठीक है तो सबसे घोर अमानुषता तो यह है कि डाक्टरने अंत्यजोंके मुहल्लेमें जाने, मरीजकी जाँच करने और खुद थरमामेटर लगाने तकसे इन्कार कर दिया। सचमुच यदि अस्पृश्यताका सिद्धांत किसी परिस्थितिमें संसारमें लागू करना ठीक हो तो वह अपने पेशेको कलंकित करनेवाले इस मनुष्यको निःसंदेह लगाया जा सकता है। पर मैं आशा करता हूँ कि श्री ठक्करके संवाददाताने कहीं अत्युक्ति कर दी होगी। और यदि यह घटना पूरी तरह सत्य हो, तो मैं यह आशा करता हूँ कि वह डाक्टर स्वयं आगे बढ़कर उस समाजकी सेवा द्वारा अपनी गलतीकी भरपाई कर देगा जिसके साथ उसने अपनी अमानुषता द्वारा ऐसा घोर अत्याचार किया है।

हिन्दी-नवजीवन
५ मई, १९२७



पढ़िये, सोचिये और रोइये

काठियावाड़के एक गांवमें एक अंत्यजशाला है। उसके शिक्षक भाई······ संस्कारी, सेवाभाववाले और जन्मतः जुलाहे (अर्थात् ढेड़) हैं। गायकवाड़ सरकारकी अनिवार्य शिक्षा नीतिकी योजनाके अनुसार वे पढ़े हैं और अपनी जातिकी उन्नतिके लिये जो कुछ सेवा उनसे बन पड़ती है कर रहे हैं। वे सुघड़ हैं, सुविचारवाले हैं, और उनकी रहन-सहन भी ऐसी है जिससे उन्हें सहसा कोई ढेड़ नहीं कह सकता। तथापि पुराणप्रिय काठियावाड़के एक छोटेसे गांवमें रहकर अपनी जातिके बच्चोंको पढ़ानेका सौभाग्य या दुर्भाग्य उन्हें प्राप्त हुआ है। इसलिये वहाँका प्रत्येक आदमी उन्हें ढेड़ और अस्पृश्य समझता है। परंतु वे तो अपना काम उसी तरह चुपचाप करते जा रहे हैं। परंतु इस असह्य स्थितिमें रहने पर भी कभी-कभी मनुष्यका रोष, कष्ट और दुःख शब्दोंमें प्रकट हो ही जाता है। इन भाईके नीचेवाले पत्रसे यह बात साफ-साफ प्रकट होगी। इस पत्रके प्रत्येक छोटे वाक्यमें करुणा कूट-कूट कर भरी है। गाँव, डाक्टर, लेखक, सज्जन नगरसेठ, और अन्य 'गरासिया' भाईके नाम जान-बूझकर इसलिये छोड़ दिये हैं कि संभव है, उनके मालूम हो जाने पर लेखक शिक्षकको कोई नुकसान पहुंचावे।

"नमस्कारके साथ निवेदन है कि ता० ४—५—२० को मेरी धर्मपत्नी प्रसूत हुई। ता० ६—४—२६ के दोपहरके बाद वह बहुत बीमार हो गई। कई जुलाब हुए और जबान भी बंद हो गई। सांस बढ़ गया, छाती सूज गई और पसलियाँ भी दुखने लगी। इसलिये मैं यहाँके मिहरबान डाक्टर······को बुलानेके लिए गया। परंतु उन्होंने कहा कि मैं ढेड़वाड़ेमें नहीं जाऊँगा। ढेड़को छूकर उसकी जाँच नहीं करूँगा। अंतमें नगरसेठ और गरासिया दरबारको लेकर मैं डाक्टर साहबके पास गया। दो नगरसेठसे फीस देना कुबूल कराया, तब उन्होंने इस शर्तपर आना कुबूल किया कि मरीजको ढेड़वाड़ेसे बाहर लाओ तो चलता हूँ। दो दिनकी प्रसूता जच्चाको ढेड़वाड़ेसे बाहर लाया गया। तब डाक्टर साहबने एक मुसलमानको थर्मामिटर दिया और उन्होंने मुझे। मैंने उसे लेकर अपनी पत्नीकी बगलमें रक्खा और निकालकर फिर उस मुसलमानको दे दिया। मुसलमानने पुनः डॉक्टर साहबको लौटा दिया। उन्होंने अंधेरेमें दूरसे, बिना देखे ही कह दिया कि इसे न्यूमोनिया हो गया है। रातके आठ बजे होंगे। डाक्टर साहब गये, हम लोग दवा लाये, अलसीके लेपका डिब्बा मैं दुकानसे खरीदकर लाया। दवाकर रहे हैं। डॉक्टर साहबने शरीरकी जाँच नहीं की, दूरसे देखकर चले गये। दो रुपए फीसके दे दिये। ऐसी गंभीर बीमारी है।··········से मेरी स्त्रीके कुशल समाचार

लेनेके लिये आये हैं। परमात्मा करेगा सो होगा। अब क्या करना चाहिये, कृपया लिखें।

आपका नम्र सेवक

..........................."

(२)

"विशेष यह है कि चिराग गुल हो गया। मेरी स्त्री आज दोपहरके दो बजे चल बसी।

सेवक

......................."

ऊपर उद्धृत किये पत्रपर चर्चा करके दिलके फफोले फोड़ना व्यर्थ है। पढ़े-लिखे डाक्टर एक मुसलमान भाईको मध्यस्थ बना लेनेसे कांच और पारेके थर्मामिटरको शुद्ध समझने लग जाते हैं, और दो दिनकी जच्चाको कुत्ते-बिल्लीसे भी बुरी और हीन समझकर उसकी जांच करनेसे इन्कार करते हैं? ऐसे निर्दय डॉक्टरको क्या कहा जाय? और जो समाज ऐसे निंद्य बर्तावको बर्दाश्त कर ले उसे भी क्या कहा जाय? शोक! शोक!!

हिन्दी-नवजीवन
५ मई, १९२७



हमारा कलंक

श्रीयुत एस० डी० नाईकरनी एक साफ-साफ लिखनेवाले आदमी हैं और अछूत कहे जानेवाले भारतीयोंके लिये उनका हृदय भी बड़ा विशाल है। मैं अन्यत्र उनका वह पत्र ज्योंका त्यों प्रकाशित करता हूँ, जिसमें उन्होंने दलित जातियोंके विषयमें अपने हार्दिक भावोंको खोलकर रख दिया है। और उन्होंने स्पृश्य जातियोंकी निंदाका जो घड़ा मेरे सिरपर डालकर खाली किया सो ठीक ही किया है। पर मेरी बातको छोड़ दें तो भी उनके गहरे दुःखने उनकी तर्क बुद्धिपर जो कि प्रायः जागृति रहती है, परदा-सा डाल दिया है। किंतु यद्यपि अंत्यजोंकी दशा बहुत भयंकर है तथापि मेरा ख्याल है कि न तो बंबईकी महासमितिकी बैठकमें और न दिल्लीकी एकता परिषदमें उसको स्थान मिल सकता था जब कि सिर्फ हिन्दू-मुसलिम

एकताके सवालपर ही हमें वहाँ विचार करना था। इन सभाओंमें अस्पृश्यताके प्रश्नपर विचार करना उतना ही युक्ति-संगत होता, जितना कि बाल-विधवाओंके दुःखोंपर विचार करना, यद्यपि वे भी हैं तो भयंकर ही। पर इस छोटेसे तर्क-दोषके कारण इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नका महत्व कम नहीं हो सकता, जिसे श्रीयुत नाडकरनीने इतने जोरोंके साथ पेश किया है। मैं इस बातमें श्रीयुत नाडकरनीसे पूर्ण-तया सहमत हूँ कि यदि हिन्दू-मुसलिम एकताके बिना स्वराज्य नहीं मिल सकता तो भारतके सिरके इस कलंक—अस्पृश्यताको बिना मिटाये स्वराज्यकी आशा और भी कम है। मुझे इससे कोई विशेष मतलब नहीं है कि हम जो राजनैतिक योजना बनावें उसमें अस्पृश्योंका स्थान कहाँ होगा। यदि हम हिन्दूलोग इस प्रश्नको गंभीरतापूर्वक हाथमें नहीं लेंगे तो उस योजनाके वे सब कृत्रिम आधार गिरकर चूर-चूर हो जायंगे। पृथक-जातीय-चुनाव और पृथक रिआयत या व्यवहारके विपक्षमें मैंने जो दलीलें दी थीं वे अस्पृश्यताके विषयमें भी उसी तरह लागू होती हैं। हमें अस्पृश्यताका निवारण किसी कानूनकी सहायता लेकर नहीं करना चाहिये। यह तो तभी सफल होगा जब, हिन्दू-विवेक जागृत होकर अपने आप इस कलंकको स्वयं मिटा देगा। यह तो स्पृश्योंका अस्पृश्योंके प्रति अपना कर्त्तव्य है।

पत्रके अंतमें एक भयंकर वाक्य है। "उन लोगोंको उस दिनकी राह न देखने दीजिये जब दलित-जाति-सभायें अथवा स्पृश्य और अस्पृश्योंके उपद्रवोंको उनकी आँखें खोलकर अस्पृश्योंकी आवश्यकताओंको उन्हें दिखाना पड़े।" इस वाक्यके अंदर जो शक्ति है उसको माननेसे इन्कार करना असंभव है। यह वाक्य मुझे उस बातचीतकी याद दिला रहा है, जो गोखलेकी मृत्युके पहले मेरे और स्वर्गीय हरिनारायण आप्टेके बीच थी। पूनामें भारत-सेवक-समितिके कार्यालयमें यह बातचीत हो रही थी। कुछ मिशनरियोंकी भांति दलित जातियोंमें आँदोलन करके उनमें असंतोष उत्पन्न करनेके बजाय, मैं यह बता रहा था कि ऊँची कही जानेवाली जातियोंमें काम करना अधिक अच्छा है। काम मेरे लिये नया था। श्री हरिनारायण आपटेकी भांति मैंने अंत्यजोंके उस दुःख-सागरका दर्शन और अनुभव नहीं किया था जिनमें कि वे डूब रहे थे। ऊँची जातियों द्वारा दलित जातियोंपर जो अत्याचार हो रहे थे, उनको देखकर इस सुधारकके हृदयमें आग धधक रही थी। मैंने तत्त्वज्ञानीकी सी बुद्धि दिखाते हुए इस ज्वलंत सुधारकसे पूछा "क्या आप हमारे खिलाफ इन दलित जातियोंको उकसाना पसंद करेंगे?" उन्होंने गरम होकर एकदम जवाब दिया "जरूर अगर वे मेरी सुनें तो मैं आज ही उनको हम ऊँची जातियोंके खिलाफ बलवा करनेके लिये उकसा दूँ, और उन्हें हम लोगोंसे वे चीजें बलपूर्वक छीननेके लिये कहूँ, जो कि हम उन्हें अपना कर्तव्य समझकर देनेसे इन्कार करते हैं।"

इस सुधारकके क्षेत्रमें अब बहुत-कुछ काम हो चुका है, किंतु वह काम भी

बेहद है, जो हमें अभी करना बाकी है। कितने ही सुधार खून-खच्चरके बाद हुए हैं। आखिर दलित मनुष्योंकी सहन-शक्तिके सीमा होती है, जिसके पार होते ही वे कानूनको अपने हाथोंमें लेकर मारे दुःख और क्रोधके पागल हो अत्याचारीका काम तमाम कर डालते हैं और मौका मिलते ही वे सब गलतियाँ करते हैं जो उनके अत्याचारियोंने की थीं। इसलिये यद्यपि मैं आशा करता हूँ कि मैं इस समय उसी रोषको अनुभव कर रहा हूं जो कि उस समय श्री हरिनारायण आपटेके दिलमें भरा हुआ था, मुझे इस श्रद्धापूर्वक काम करना चाहिये कि ऊँची कही जानेवाली जातियाँ अब भी, जबतक समय है, अपने कदम वापिस ले लेंगी, और दलित जातियोंके साथ वह न्याय करेंगी जो कि उन्हें अबसे कहीं पहले उनके साथ करना चाहिये था। मुझे इस श्रद्धासे भी काम करना चाहिये कि यदि ऊँची जातियाँ अपने किये का कहीं पश्चाताप न करें तो अपने अन्यायकर्ताओंके विरुद्ध बलवा करनेके बजाय अछूत कोई दूसरा अच्छा-सा रास्ता ढूंढ निकालेंगे। मुझे इस आशासे भी अपना काम जारी रखना चाहिये कि ये दलित जातियाँ आत्म-शुद्धि और कष्ट-सहन द्वारा अपनी ऊँची आत्मा और ऊँचे हिन्दुत्वका परिचय देकर मनुष्य और परमात्माकी नजरमें अपने आपको तथा हिंदू-धर्मको इन लज्जित करनेवालोंकी तुलनामें अधिक ऊँचा सिद्ध कर दिखावेंगे। तबतक प्रत्येक, हिन्दू जिसके हृदयमें श्री नाडकरनीके समान अंत्यजोंके लिये प्रेम है, उनका साथ देकर तथा उनके दुःखोंमें और संकटोंमें भाग लेकर अपने आपको 'अस्पृश्य' बना ले सकते हैं।

हिन्दी-नवजीवन
३० जून, १९२७



अस्पृश्यता-निवारण

श्रीयुत एस० डी० नाडकरनी कारवारसे १० सितम्बरके अपने पत्रमें लिखते हैं—

"पिछले हफ्ते मैं और मेरे भाईने कुछ नवयुवकोंकी सहायतासे बहुत-सी अनसोची कठिनाइयोंके होते हुए भी 'खरा सार्वजनिक गणेशोत्सव' (मानी जिसमें सब कोई शामिल हो सकें) का प्रबन्ध किया था। इस नामका अर्थ यह है कि इसमें हमने अछूतोंको भी शामिल किया था। इसमें ओर सब हिन्दुओंने भी हाथ बँटाया था। जुलूसके अलावा हमने पूजा, भजन, आरती, कीर्तन, पुराणपाठ और अंतमें इसी अवसरके लिए खास-तौरपर लिखे गए नाटकका प्रबंध किया गया था जो इस बीच दो बार खेला गया। इस नाटकका आधार हमारे डिस्ट्रिक्ट बोर्डके अछूत सदस्यका सच्चा अनुभव है। एक बार वे एक दूसरे मुसलमान सदस्यके साथ

पड़ोसके गांवके मंदिरमें पाठशालाका निरिक्षण करने गए थे और उन्हें भीतर नहीं जाने दिया गया जब कि उनके साथी मुसलमान भीतर जाकर स्कूलका निरीक्षण कर सके ! क्या आप इसपर विश्वास करेंगे ? उन्हीं अस्पृश्य या 'मुझे न छुओ' वाले हमारे भाइयोंने नाटकका खेलना रोकनेके लिए मुसलमानोंसे झूठी दरख्वास्त दिला दी थी कि यह नाटक मुस्लिम-विरोधी है। हमारे समाजमें परमावश्यक सुधार करनेके आन्दोलनके विरुद्ध क्या इससे भी अधिक आत्मघाती रास्ता कोई हो सकता ? मगर न्याय और बुद्धिकी बलिहारी है कि उनकी कोशिश बेकार गयी !

"पूनेके चित्रे शास्त्री (महाराष्ट्र-हिन्दू-महासभाके सभापति) की सहायतासे जो खास इसी मौकेके लिए बुलाए गए थे, हमने हिन्दू-महासभाकी स्थानिक शाखा खोली। इसका प्रधान उद्देश्य है अस्पृश्यता निवारण करना और हमारे सार्वजनिक मंदिरोंमें अछूतोंको प्रवेशका अधिकार दिलाना।"

जैसे कि श्रीयुत नाडकरनी उन्हें 'मुझे न छुओ' वाला कहते हैं, उन अपने-आप रूढ़िपंथी बने हुए हिन्दुओंका, सुधारकोंके एक निर्दोष नाटकका प्रबंध करने पर अछूतोंके उसमें आनेका विरोध करना और विरोध करनेका ढंग, उनके या उनके हिन्दू-धर्मके लिए प्रशंसाकी बात नहीं है। उससे यह भी जाहिर होता है कि धर्मके पवित्र नामपर आँख मूँदकर रूढ़ियोंका कहाँतक पालन किया जा सकता है। मैं श्रीयुत नाडकरनी और उनके मित्रोंको सफलतापूर्वक अछूतोंको अपने जुलूसमें शामिल करके नाटकके खेलनेमें दाखिल करने पर साधुवाद देता हूँ। अस्पृश्यताको दूर करनेका एक मात्र रास्ता यही है कि हर एक सुधारक ऐसा कोई न न कोई, चाहे कितना ही छोटा क्यों न होवे, रचनात्मक काम करे और नम्रताके साथ दृढ़ताको मिलाकर वहम और पक्षपातकी दुहरी दीवारोंको तोड़े। मैं आशा करता हूँ कि कारवारके सुधारकोंको अछूतोंको मंदिरोंमें दाखिल करनेके प्रयत्न सफलता मिलेगी।

हिन्दी-नवजीवन
१० नवम्बर, १९२७



हमारा और उनका कलंक

उड़ीसाकी मुसाफिरी बहुत दिनोंसे मुल्तवी चली आती थी और जब वह आयी भी तो मेरे संताप और जिल्लतको बेहद बढ़ा देनेके लिए ही। नजदीकसे नजदीकके रेलवे स्टेशनसे ३१ मील दूर बोलगढ़में मैं दीनबन्धु ऐन्ड्रयूजके साथ

बैठा बातें कर रहा था। उसी समय सिर्फ एक मैली-सी लंगोटी पहने, कमर झुकाये, एक आदमी झुकता हुआ मेरे सामने आया। उसने जमीनपरसे एक तिनका उठाकर मुँहमें डाल लिया, और मेरे आगे साष्टांग लोट गया; फिर उठकर प्रणाम किया, तिनका निकालकर बालमें रख लिया और जाने लगा। यह दृश्य देखते हुए मैं तकलीफसे ऐंठ रहा था। यह खत्म होते ही मैंने किसी दुभाषिएको पुकारा और इस भाईको बुलाकर बातें करने लगा। वह बेचारा अछूत था। बोलगढ़से छः मीलपर रहता था। बोलगढ़में लकड़ी बेचने आया था। मेरे पूछने पर कि मुँहमें तिनका क्यों लिया था उसने कहा कि 'आपका आदर करनेके लिए।' शर्मसे मैंने सिर झुका लिया। इस 'आदर' की कीमत मुझे बहुत भारी, असह्य जान पड़ी। मेरी हिन्दू-भावनाको गहरी चोट लगी थी। मैंने कहा, "मुझे कुछ दोगे" ? वह बेचारा एक पैसेके लिए कमर टटोलने लगा। मैंने कहा, "मुझे तुम्हारे पैसे नहीं चाहिए, पर मैं उससे भी अच्छी चीज माँगता हूँ।" उसने कहा, "दूँगा"। मैंने उससे पूछ लिया था कि वह शराब पीता था, मुरदार मांस खाता था—बल्कि यह तो रिवाज ही था।

"मैं तुमसे यह माँगता हूँ कि तुम जबान दो कि दुनियाँमें किसी आदमीके लिए आगेसे मुँहमें तिनका नहीं लूंगा, यह तो आदमीके लायक काम नहीं है; फिर कभी शराब नहीं पाऊँगा, क्योंकि वह आदमीको पशु बना देती है; मुरदार मांस नहीं खाऊँगा, क्योंकि यह हिन्दू-धर्मके विरुद्ध है और कभी कोई सभ्य आदमी मुरदार मांस नहीं खायगा।"

उस गरीबने जवाब दिया, "मगर मैं शराब न पीऊँ और मुरदार मांस न खाऊँ तो बिरादरीवाले मुझे जातिसे निकाल देंगे।"

"तब अजात होनेकी तकलीफ सहो और जरूरत पड़े तो गाँव छोड़ दो।"

इस पददलित गरीब आदमीने वचन दिया। अगर वह अपनी बात पर कायम रह गया तो उसकी यह भेंट, मेरे धनीसे धनी देशवासियोंके दिये धनसे अधिक बहुमूल्य होगी।

यह अस्पृश्यता हमारा सबसे बड़ा कलंक है। इसकी जलालत दिनों-दिन बढ़ता जाती है।

मगर यह अविस्मरणीय घटना तो उस बड़े भारी शर्म और दुःखका एक अंश भर थी। १९१६ में चम्पारणके बाद मैंने फिर कभी वह मृत-शान्ति नहीं देखी जो बाणपुरसे इस उड़ीसामें प्रवेश कर देखी है। शायद उड़ीसाकी शान्ति चम्पारणकी शान्तिसे भी बुरी है। वहाँके रैयतोंके बीच थोड़े ही दिनोंतक रहनेके बाद उनमें उत्साह आ गया था। मगर उड़ीसामें इतनी जल्दी उत्साह आनेमें मुझे

शंका है। मुझे कहा गया है कि जमींदारों, राजाओं और स्थानिक पुलिसने रैयतोंको मेरे पास आनेसे बहुत डरा दिया है। मैं तो इस विश्वासमें फूला हुआ था कि अब जमींदारों, राजाओं और छोटेसे छोटे पुलिस अफ्सरोंने मुझसे डरना छोड़ दिया है। मगर यहाँ आकर मेरा ख्याल बदला है। खुद इधर-उधर घूमनेमें बहुत कमजोर होनेसे मैंने मित्रोंको लोगोंके बीच भेजा और इसके कारणका पता लगवाया। वे लोग यह खबर लाये कि लोगोंको कहा गया है कि "गांधीजीके पास मत जाओ। उनके सम्मानमें किए गए किसी उत्सवमें शामिल मत होवो, नहीं तो सजा मिलेगी।" ऐसी सूचनाएँ दूसरे प्रान्तोंमें भी दी गई हैं, मगर ऐसे साधारण दिनोंमें उनका कहीं कोई असर नहीं पड़ा है। उड़िसाके रैयत ऐसे मालूम पड़े जो सदा भयभीत रहते हैं और इसलिए जरा-सामें उन्हें विचलित किया जा सकता है।

यह ऐसा कलंक है जो हमारे-और हमारे शासकों दोनोंके सिरपर है। यह सच है कि राजा और जमीन्दार और पुलिसके छुटभैये, सभी हमारे अपने ही भाई, अपने ही खून हैं। मगर इस भीतिके, डरके मूल तो हमारे शासक हैं। उनके शासनका आधार ही है 'भीति।' अपनी प्रतिष्ठाके नामपर उन्होंने हमारे बड़ेसे बड़ेको भी किसी-न-किसी तरह झुकनेपर लाचार किया ही है। जहाँ उन्होंने यह कायरता खुद पैदा नहीं की है, वहाँ उसे बहुत बढ़ा दिया है। उन्हें रैयतोंमें इस अधम भीतिके होनेका पता था। मगर जहाँ कहीं उन्होंने अपने राज्यके हितके नामपर उसे और उसके कारणोंकी अपने जानके समान रक्षा नहीं की है, वहाँ उसे दूर करनेका भी कोई प्रयत्न नहीं किया है। इसलिए अगर्चे कि वे इन दुःखद दृश्योंके लिए प्रत्यक्ष रूपसे दोषी नहीं भी हो सकते हैं, मगर तो भी इसमें उनका बहुत बड़ा हाथ होनेके इल्जामसे वे बरी नहीं हो सकते।

मगर हमारा कलंक तो और भी बड़ा है। अगर हम सबल स्वाभिमानी, और निडर होते तो फिर विदेशी शासक कुछ बुराई कर ही नहीं सकते थे। जो लोग डरपोक होते हैं, सिर्फ वे ही दूसरोंसे डरते हैं। और इसे तो कुबूल करना ही होगा कि अंग्रेजोंके आनेके बहुत दिन पहलेसे हम अपने जमीन्दारों और राजाओंसे डरनेके आदी थे। वर्त्तमान शासकोंने तो सिर्फ उसीको एक शास्त्र-सा बना लिया है जो पहले भी न्यूनाधिक स्थूल-रूपमें था ही। इसलिए उड़ीसाके कार्यकर्त्ताओंको सिखलाना है कि इस भीरुताको जो करीब-करीब कायरता ही है, छोड़ दो। और जमींदारों, राजाओं या पुलिसवालोंको गालियाँ देनेसे यह नहीं होगा। ये सब तो जब देखते हैं कि रैयतोंने अपनी बुरी नामर्द आदतें भुला दी हैं तब खुद दबने लगते हैं या कभी-कभी दोस्त बन जाते हैं।

हिन्दी-नवजीवन
२२ दिसम्बर, १९२६

क्या यह सच हो सकता है ?

नयी दिल्ली आर्य-समाजके सभापति लिखते हैं—

"शिमलाकी पहाड़ियोंमें बाघात रियासत है। इसके राजा पढ़े-लिखे हिन्दू हैं। रियासतकी राजधानी सोलनमें है, जो अपनी स्वास्थ्यकर जल-वायुके लिए मशहूर है। राज्यकी आबादी कोई दस हजारकी है। यहां मुख्यतः राजपूत, कानेत, ब्राह्मण ही बसते हैं। दूसरी जातियां, कोली, चमार वगैरह हैं जिन्हें नीच समझते हैं। गोकि कोलियोंका गुजर मुख्यतः खेतीसे होता है, मगर उन्हें बहुत-सी सामाजिक कठिनाइयां झेलनी पड़ती हैं। थोड़ेमें, ये ऊँची-जातिके हिन्दुओंके गुलाम हैं। इन्हें अपने हिन्दू-भाइयोंके अमानुषिक व्यवहारसे पीड़ित देखकर शिमला, आर्य-समाजने इनकी स्थिति ऊँची करनेके लिए इन्हें अपनाया, और चूंकि ये वैश्यका कर्म, खेती, करते हैं इन्हें यज्ञोपवीत दिया। यज्ञोपवीत लेनेके बादसे इन्होंने मांसाहार, शराब-खोरी जैसी बुरी आदतें छोड़ दी हैं और अछूत कहने पर बहुत बुरा मानते हैं। जान पड़ता है कि इससे ऊँची-जातिके हिन्दुओंका पारा चढ़ गया और उन्होंने यज्ञोपवीत लेनेके इनके अधिकारका विरोध किया। फलतः गत ६ जनवरी, १९२८ को इसका संक्षिप्त विचार स्वयं महाराज साहबने किया और पुरानी रीतियोंके बहाने १० कोलियोंको ६ महीने कैद और ऊपरसे दो-दो सौ रुपये जुर्मानेकी सजा दे दी। न तो इन अभागोंको अपने बचाव करनेका मौका दिया गया, और न वहांपर उपस्थित आर्य-समाजके पंडितको ही इस मुआमिलेमें आर्य-समाजका दृष्टि-कोण समझानेका अवसर दिया गया। अब खबर है कि यज्ञोपवीत उतारनेके लिए जेलमें उनपर जुल्म किया जा रहा है।"

ऊपरके पत्रमें लिखी बातें तो मुझे अविश्वसनीय-सी जान पड़ती हैं। कोलियोंको किसी तरह अछूत या दलित या व्यथित जाति नहीं गिना जा सकता। अगर वे अपने खेत आप जोतते हैं तो वर्णोंकी परिभाषाके अनुसार उनका जन्म वैश्य-वर्णमें गिना जायगा और उन्हें यज्ञोपवीत पहननेके सभी अधिकार प्राप्त हैं। मगर मान भी लेंवे कि उन्हें यज्ञोपवीत पहननेका धार्मिक अधिकार नहीं प्राप्त है, तो भी मैं यह सुननेको तो कभी तैयार नहीं था कि किसी रियासतमें कानूनके मुताबिक जनेऊ पहनना गुनाह गिना जायगा। यह भी वैसा ही अकल्पनीय है कि जिन अभागे आदमियोंने सोचा कि हमारा कोई ऐसा धार्मिक संस्कार हो रहा है, जो चाहने लायक हो, या पुण्यधर्म हो, उनके अपना बचाव करने, अपने गवाह तक पेश करनेके अधिकार जाते रहे। अगर सजा और न्यायके नाटककी बातें सच हों तो फिर यह मुझे जानकर कोई ताज्जुब नहीं होगा कि उनके शरीरपरसे जनेऊ जबरन उतार लिए गये हैं। मैं आर्य-समाजके सभापतिको आमंत्रण देता हूँ कि बाघात रियासतके विरुद्ध आप अपने लगाये इल्जामोंके समर्थनमें और भी

ब्योरे लिखें और अगर रियासतके अधिकारी चाहें तो उन्हें भी आमंत्रण देता हूँ कि आप इस मुआमलेका अपना बयान भी भेजें, जिसे मैं खुशीसे छापूँगा।

हिन्दी-नवजीवन
२२ मार्च, १९२८



बाघात रियासत और जनेऊ

गत २२ मार्चके 'हिन्दी-नवजीवन'में बाघात रियासतमें कोलियोंके साथ बर्ताव पर, मेरे लेखके बारेमें नयी-दिल्ली आर्य-समाजके सभापति लिखते हैं —

"आपने मुझे बाघात रियासतमें कोलियोंके साथ बर्तावके बारेमें और ब्योरे लिख भेजनेका जो अवसर दिया है, उससे मुझे बड़ी खुशी हुई है। मुझे इससे भी वैसी ही खुशी हुई है कि आपने रियासतके अधिकारियोंको भी अपनी बात कहनेका मौका दिया है। पता नहीं, बाघात रियासतके अफसरोंके पास आपका साप्ताहिक जाता है या नहीं। इसलिए उनकी सुविधाके लिए मैंने ही उस तारीखके हिन्दी-नवजीवनकी एक प्रति रजिस्ट्री करके भेज दी है। वे चाहें तो भले ही अपने विरुद्ध लगाए इल्जामोंका जवाब देवें।

"जहाँतक मुझसे मतलब है, रियासतके साथ अपने पत्र-व्यवहारकी नकल मैं आपके पास भेजता हूँ। मेरे सभी पत्रोंके जवाबमें एक पत्र १३ जनवरी १९२८ का आया है। १६ जनवरीके मेरे पत्रका जवाब, बार-बार लिखने पर भी नहीं आया। खैर, राणा साहेबसे मिलनेकी भी कोशिश की गई, मगर फल कुछ भी नहीं हुआ। तब आप ही सोचिए कि अपने लगाए इल्जामोंके सुबूतमें मुझे और क्या कहनेकी जरूरत है? मेरे पहला पत्र लिखनेके बादसे अबतक स्थिति केवल इतनी ही भर बदली है कि कोलियोंको इस शर्तपर जेलसे छोड़ दिया गया है कि अगर उन्होंने फिर जनेऊ पहना तो ५००) रु० जुर्माना देना पड़ेगा। इससे वे बहुत ही डर गये हैं। अब तो वे दूधके जले छाछ भी फूंक-फूंक कर पीते हैं। बाहरकी कोई सलाह उनपर असर नहीं करती।

"आपके देखनेके लिए मैं गत १८ जनवरी, १९२८ के 'ट्रिब्यून' पत्रसे एक कतरन भेजता हूँ। उसमें आप देखें कि कोलियोंका एक-मात्र कसूर यही था कि शिमला पहाड़ीमें दलित कही जानेवाली जातियोंके उद्धारके लिए आर्य-समाजके प्रचारके फल-स्वरूप उन्होंने हिन्दू-धर्मके चिन्हके रूपमें जनेऊ पहन लिया था और इस 'शुद्धि'के साथ ही साथ कितनी बुराइयाँ छोड़ी तथा धार्मिक-जीवन बिताना शुरु कर दिया। अपनी सामाजिक स्थिति सुधारनेकी उनकी ये सभी कोशिशें न सोचनेवाले बाबा-पंथी लोग अछूतोंके लिए निषिद्ध बतलाते हैं और इसीलिए उनपर राणासाहेबको भी क्रोध हो आया, गोकि अदालतमें इन गरीबोंने हिन्दू-धर्मके अपने पालन और ज्ञानका खासा परिचय दिया। मुझे उचित-से-अधिक

कड़ुवी भाषा लिखनेकी आदत नहीं है, किन्तु महात्माजी, मैं यह कहता हूँ कि ये संकीर्ण हृदय राजा, महाराजा अगर हिन्दू-समाजमेंसे अस्पृश्यताके अभिशापको दूर करनेके लिए कुछ नहीं कर सकते तो कम से कम उन्हें दलित कही जानेवाली जातियोंके उद्धारके काममें बड़ी और अन्यायपूर्ण बाधाएँ तो नहीं डालनी चाहिए। मुझे आशा है कि आपके कुछ और लिखनेसे संभवतः राणासाहेब इस मुआमलेमें अपने फैसलेकी भूल तथा अन्यायको समझ जायँ और उन्हें सुधारनेके लिए कुछ करें।"

पत्र-लेखक सभापति महोदय, और कोई नहीं, दिल्लीके नामी-दानी और कार्यकर्त्ता रायसाहेब लाला गंगाराम हैं। लाला गंगारामका पत्र पढ़नेपर तो उनके इल्जामोंकी सच्चाईके बारेमें कोई शक रही नहीं जाता। मैंने आशा की थी कि शायद उनके संवाददाताओंने मुआमलेको बढ़ा-चढ़ाकर कहा हो और बाघात रियासतने अछूत कहे जानेवालोंका जनेऊ पहनना गुनाह मुकर्रर न किया हो। रियासतके प्रधानमंत्रीके पत्रकी लाला गंगारामकी नकल यह रही—

"१० जनवरी, १९२८ के आपके पत्रके जवाबमें मुझे यह कहना है कि चूँकि इस मुकदमेमें आर्य-समाज एक पक्ष नहीं था, इसलिए आपको रियासतकी ओरसे उस फैसलेकी एक नकल नहीं दी जा सकती।"

मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि जवाब बहुत ही बुरे ढंगपर लिखा गया है। वह अंग्रेज अफसरोंके संक्षिप्त और एक ही ढरेंके पत्रोंकी बुरी नकल है जो अमूमन जरा टेढ़े सवाल पूछनेवालोंको भेजे जाते हैं। मगर ये महाशय भी साधारणतः प्रतिष्ठा और पदकी इज्जत करते हैं तथा जवाब देनेसे बचनेके लिए भद्दे तौरपर नयी बातें नहीं पैदा कर लेते हैं। बाघात रियासतके प्रधान-मंत्रीने समाजमें लाला गंगारामकी स्थिति (पदवीको छोड़करके) की उपेक्षा करनेका दुःसाहस किया है और उन्हें अपमानित करनेके लिए वैसी बातोंकी कल्पना कर ली है जिनका जिक्र तक लाला गंगारामने अपने पत्रमें नहीं किया था। क्योंकि न तो उन्होंने फैसलेकी नकल माँगी था और न बिचारे कोलियोंके मुकद्मेमें शरीक होनेका ही दावा किया था।

यह मुआमिला दरअसल हिन्दू-महासभाको अपने हाथोंमें लेना चाहिए। मुझे पता नहीं है कि महासभा नामधारी अछूतोंका जनेऊ पहना पसन्द करती है या नहीं। भले ही पसन्द करे या नहीं किन्तु पहननेवालोंपर अत्याचार किया जाना तो वह कभी पसन्द नहीं कर सकती। जिस घड़ी यज्ञोपवीत कुछ खास लोगोंका इजारा हो जाता है तथा उस इजारेवालोंको दंड दिया जाता है, उसकी पवित्रता नष्ट हो जाती है। यह पवित्र तब और इसलिए था कि इसे धारण करनेवाले विद्वान् और पवित्र पुरुष होते थे। अगर बाघात रियासतकी जो बात कही जाती है उसका छूत दूसरोंको भी लग गया तो फिर यह अवनति या छुटपनेका चिन्ह हो पड़ेगा।

हिन्दी-नवजीवन

५ अप्रैल, १९२८

अछूतों को याद रक्खो

इस अंकके निकलनेके दो दिनोंके भीतर राष्ट्रीय-सप्ताह आ जायगा। आत्म-शुद्धिकी क्रियामें, एक समय हम शराब, ताड़ीकी दूकानोंपर पहरा देते थे। कोयम्बटूरकी आदि-द्राविड़-सभाके दिये मानपत्रके निम्नलिखित अंशको पढ़ते समय मेरे मनमें सन् १९२१ के उसी जमानेकी याद आती है—

"जब राष्ट्रीय-सभाने अस्पृश्यता निवारणको भी अपने मन्तव्योंमें शामिल किया, तब हमें आशा हुई थी कि हमारे समाजके ६ करोड़ (अछूत) हिन्दुओंकी उन्नतिके रास्तेमेंसे सभी रोड़े बातकी बातमें दूर हो जायेंगे। मगर सालके बाद साल बीतते चले गए और इस बातमें हमें आशाकी एक किरण भी नहीं मिली। शायद इससे लाभ इतना ही हुआ है कि दयावन्त सरकारने सामान्य हुक्म निकालकर हमारे लिए सभी सार्वजनिक रास्ते कुएँ और संस्थाएँ खुली कर दीं। मगर पुरानी हालत जरा भी नहीं बदली है। दूसरे हिन्दू हमारी आत्मासे भी घृणा करते हैं। हमलोग मनुष्य और राष्ट्रोंके भाग्यनियंता परमपिता परमात्माकी पूजा भी मंदिरोंमें नहीं करने पाते। हमारे लिए गिरजाघरों और मस्जिदोंके दरवाजे हमेशा बराबर खुले हैं और उनके धर्मप्रचारक हमारा स्वागत हमेशा करते हैं। हमारे समाजकी बस्ती, चेरियोंके भीतर ही या उनके निकट शराबकी दूकानें खोलकर हमारे नवयुवकोंको प्रलोभनमें डालती है। अगर इन दूकानोंके बदले उद्योगशालाएँ खुल जायँ और आबकारी ठेकेदारोंके बदले समाज-सेवक लोग हमपर कृपा दृष्टि डालें तो हमें जरा भी शक नहीं है कि हमारी दशा बातकी बातमें सुधर जायगी इसलिए हम आपसे हार्दिक आग्रह करते हैं कि आप हमारी जातिका सर्वनाशसे रक्षाके लिए हमारी चेरियोंके भीतर या उनके निकट औद्योगिक शालाएँ खुलवानेमें मदद करें।"

राष्ट्रीय-सप्ताहमें हमें यह देखनेकी जरूरत नहीं है कि सरकारने क्या किया और क्या नहीं किया है। किन्तु यह सोचना अनिवार्य है कि हमने क्या किया या नहीं किया है। इसमें तो कोई शक ही नहीं कि गोकि अस्पृश्यताके विरुद्ध लोकमत दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है, सार्वजनिक प्रयत्न निर्बल ही है। जबतक हम पुजारियोंको अछूतोंके लिए सार्वजनिक मंदिरके दरवाजे खोलनेके लिए राजी नहीं कर सके हैं, और न एक भी शराब या ताड़ीकी दुकानके बदले औद्योगिक शाला या विश्रामगृह खोल सके हैं, जहांपर उन्हें उस आगभरी शराबके बदले पौष्टिकपेयक या स्वच्छ परिस्थितिमें स्वास्थ्यकर वस्तुएँ खानेको मिल सकें।

हिन्दी-नवजीवन
५ अप्रैल, १९२८

वचन-भंग

पारसाल जब मैं गंजम् जिलेमें ब्रह्मपुरमें गया था, मुझे एक मंदिरमें ले गये थे। उसके बारेमें मुझसे कहा गया था कि वह 'अछूत' कहे जानेवालोंके लिए भी खुला हुआ है। मेरे साथ कुछ 'अछूत' मित्र भी थे। कुछ हफ्ते हुए मेरे पास एक पत्र आया था कि मंदिरके ट्रस्टी लोगोंने अछूतोंका प्रवेश मना कर दिया है। मैं इसपर विश्वास करनेमें हिचकता था। इसलिए मैंने पत्र लिखकर पुछवाया, जिसका जवाब यह आया है—

"विगत २२ मार्चके आपके पत्रके जवाबमें यह लिखना है कि 'अछूत' कहे जाने-वाले लोग तो अब भी ब्रह्मपुरके रघुनाथमंदिरमें नहीं जाने पाते। श्रीयुक्त जगनायकल्ली नायडू, जिला अदालत गंजम्के भूतपूर्व नाजिर, जिन्होंने पारसाल आपको मंदिरमें निमंत्रित किया था, मंदिरके ट्रस्टी हैं। वे ही अब मन्दिरमें अछूतोंके प्रवेशमें पहलेसे भी अधिक बाधाएँ डाल रहे हैं। अगर्चे कि पतित पावन समाजने नगरके नेताओंसे व्याख्यान और लेखोंके द्वारा प्रार्थना की थी, मगर किसीके कानोंमें जूँ भी नहीं रेंगती है। बेचारे नामधारी अछूतोंकी श्रद्धा कांग्रेसके अछूतोद्धार आन्दोलनपरसे धीरे-धीरे उठती जाती है। शायद आपके कुछ लिखनेसे वे अपना कर्त्तव्य पहचान सकें।"

अगर ये बातें सच्ची हैं तो यह सरासर अपना वचन तोड़ना है—और वह वचन न सिर्फ मुझीको दिया गया था बल्कि मेरी मार्फत ब्रह्मपुरके लोगोंको। मैं समझ नहीं सकता कि ट्रस्टीगण अपने इस कामकी क्या कैफियत या बचाव देंगे। यह तो बेशक अछूतोंके सत्याग्रह करनेका स्पष्ट मुआमला है। अगर उनका मंदिर-प्रवेश सचमुच ही मना हो, तो मैं आशा करता हूँ कि ब्रह्मपुरकी जनता इस निषेधको हटाकर अपने सम्मानकी रक्षा करेगी।

हिन्दी-नवजीवन

१२ अप्रल, १९२८

❀

भंगी बनाम ढेड़

एक तीसरी सभाके दुःखद अनुभव सुनिए। अहमदाबाद शहरके पास कोचरब गाँवमें एक अंत्यजशाला है। उसे विद्यापीठके स्नातक चलाते हैं। जान पड़ता है कि उसके लिए वे यथेष्ट परिश्रम करते हैं। उसमें विद्यार्थियोंकी संख्या अच्छी थी। सभी ढेड़ थे। शिक्षकोंको भंगीके बालकोंका ध्यान आया। उन्हें पाठशालामें बुलानेका निश्चय शिक्षकोंने किया। भंगी बालक आए इसलिए ढेड़ बालकोंके माँ-बापने अपने लड़कोंको शालामेंसे उठा लिया। उनमेंसे कितने-एक लौट आए मगर बहुतसे ही बाहर ही रहे। इससे शिक्षकोंने सोचा कि अगर मैं जाऊँ तो शायद ढेड़ माँ-बाप मानेंगे और अपने लड़कोंको भेजेंगे। मैं गया। किन्तु थोड़े ही ढेड़ माँ-बाप सभामें आये। एक भाई आए, उन्होंने मुझे खूब खरा जवाब दिया—

'भंगीको क्या ढेड़ छूए?' छूआछूतके परंपरासे चलते धर्मका इस सनातनी ढेड़ भाईने समर्थन किया।

मैंने पूछा, 'पर अगर ढेड़ भंगीको न छुए तो फिर बनिया, ब्राह्मण वगैरह किस तरह ढेड़को छुएँ?'

'बनिया, ब्राह्मणको हम कहां ढेड़ोंको छूनेको कहते हैं? वे हमें मत छुएँ।' यह कहकर ढेड़ भाईने मुझे हराया।

हाथका किया काम यों हमारे हृदयपर चोट करता है। अगर छुआछूतका सड़न बहुत दिनोंतक चलता तो हम एक दूसरेको अछूत बनाते और बिना मौत ही मरते। किन्तु अब उसे ढेड़ मानें या ब्राह्मण-बनिया मानें, अस्पृश्यताका सांप अधिक दिनों सांस नहीं ले सकता।

शिक्षकोंको अपने निश्चयपर अड़े रहना है। ढेड़ भाइयोंपर वे रोष न करें मगर ढेड़ बालकोंको रखनेके लिए एक भी भंगी बालकको हटावें नहीं। भंगी बालक जितने आवें उन्हें पढ़ावें और इसीमें अपने कार्यकी सफलता मानें। उनकी निश्छलता और श्रद्धाकी छूत ढेड़ोंको भी जरूर लगेगी और अगर भंगी बालकोंमें स्वच्छता, सत्य, प्रेम, ज्ञान वगैरह देखेंगे तो वे अपने बालकोंको भेजे बिना रहीं नहीं सकेंगे। अस्पृश्यताका मैल धोनेकी इच्छा रखनेवालेको सबसे पहले उसीका संग्रह करना चाहिए जिसका सभी कोई त्याग करते हैं। ऐसे सुधारकोंको मैं जानता हूँ, जो सोचते हैं कि "ढेड़का सुधार करनेके पहले हम अपना सुधार तो कर लें। हम पहले आप सुधर लेंगे तो ढेड़ोंको भी सुधारेंगे

इस विचारश्रेणीमें दो दोष हैं। एक तो अधैर्य और दूसरा अज्ञान। अधैर्य इसलिए कि हम कठिनाइयोंका सामना करनेका धैर्य खो बैठते हैं। अज्ञान इसलिए कि हम नहीं जानते कि हिन्दू-धर्ममें जो सबसे बड़ा सुधार करना है वह तो इस अस्पृश्यताका मैल धोनेका है। दूधमें अगर जहरका स्पर्श भी हो जाय तो भी जिस तरह वह बेकार हो जाता है उसी तरह अगर हिन्दू जातिमें अस्पृश्यताका स्पर्श-सा भी रहने देते हैं तो यह जाति बेकार हो जाती है। इस कलंकके धोनेसे दूसरे सुधार रुक नहीं जाते हैं। इस कलंकको रहने देने पर दूसरे सुधार लगभग बेकार हो जाते हैं। क्षयके रोगीके दो-एक फोड़े साफ किये ही तो क्या, और न किये तो भी क्या ?

हिन्दी-नवजीवन

१९ अप्रैल, १९२८



दलितवर्ग और बाघात रियासत

आखिर गत ५ तारिखको बाघात रियासतके राणा साहबने आर्य प्रतिनिधि-सभा, पंजाबकी ओरके एक शिष्ट-मंडलसे जिसमें रायसाहब लाला गंगाराम, पंडित चमूपति एम० ए०, दीवान रामशरणदास लुधियाना, पंडित धर्मवीर वेदालंकार और लाला शंकरनाथ ऐडवोकेट शिमला, शामिल थे, आर्य-समाजके शुद्ध किए हुए कोलियोंके यज्ञोपवीत धारणपर रियासतके व्यवहारसे जो स्थिति पैदा हो गई है, उसपर बातें की।

शिष्टमंडलको ऊपर लिखी बातचीतके बारेमें निम्नलिखित संयुक्त-विज्ञप्ति निकालनेकी इजाजत मिली है—

"शिष्ट-मंडलके सभ्योंने राणा साहेबको उनके अतिथि-सत्कारके लिए धन्यवाद दिया और इस संबन्धमें शास्त्रोंकी आ । तथा आर्य-प्रतिनिधि-सभाकी स्थिति स्पष्ट की। राणा साहेबने धैर्यसे मंडलकी बातें सुनी तथा उसे भरोसा दिलाया कि उनकी रियासतमें सभी सम्यक् स्थापित धर्म-प्रचारिणी सभाओंको धर्म-प्रचारकी पूरी स्वतन्त्रता है। मंडलने राणा साहेबको उनकी शिष्टताके लिए तथा उत्साहदायक जवाबके लिए धन्यवाद दिया और बिदाई माँगी।"

इस संयुक्त बयानमें अत्यन्त अधिक सतर्कता तथा राज्यकी भीरुताकी झलक दिखलायी पड़ती है। दलितोंके प्रति किये गये अन्याय तथा एक महान् धार्मिक संस्थाके प्रति अपमानको स्वीकार करनेसे जनतामें रियासतकी इज्जत

बहुत बढ़ जाती। खैर, जो हुआ उसीके लिए धन्यवाद देना चाहिए। अगर राणा साहेबकी प्रतिज्ञाके भावका तथा उनके शब्दोंका भी पालन हुआ तो अन्याय और अपमानकी बात भूल जायगी।

हिन्दी-नवजीवन
१७ मई, १९२८



न्यायकी विजय

वर्धामें श्री लक्ष्मीनारायणका एक सुंदर, सजा हुआ और प्रसिद्ध मंदिर है। इसे जमनालालके दादाने बनाया था। यह मंदिर है तो व्यक्तिगत, पर जनताके लिए खुला हुआ है। जमनालालजी जिस तरह अछूत कहे जानेवालोंके लिए वर्धामें कुँओंपर पानी खींचनेका अधिकार दिलानेके लिए तथा उन्हें और सब तरहकी सुविधाएँ दिलानेकी कोशिश कर रहे हैं—और इसमें उन्हें सफलता भी मिली है उसी तरह वे इस मंदिरमें भी अछूतोंको प्रवेशाधिकार दिलानेकी कोशिश करते रहे हैं। उन्हें ट्रस्टियोंको इस रायसे सहमत करनेमें कठिनाई पड़ी थी कि इस खास मंदिरका द्वार उनके लिए भी खोल दिया जाय, जिन्हें अंधी रूढ़िने दबाये रक्खा है। आखिर इस प्रयत्नको भी सफलता मिली है। गत १७ ता० की सभामें ट्रस्टियोंने सर्वानुमतिसे प्रस्ताव स्वीकार किया—

"चूँकि अस्पृश्य गिने जानेवाले लोगोंको श्री लक्ष्मीनारायण-देवस्थान, वर्धामें अन्दर आकर दर्शन करने देनेका प्रश्न इस कमेटीके सामने बहुत दिनोंसे है, और कई बार उपस्थित किया जा चुका है, परन्तु उसका निर्णय अबतक नहीं हुआ है, और चूँकि देशकी सबसे बड़ी राष्ट्रीय-संस्था राष्ट्रीय-महासभा, अस्पृश्यता दूर करनेका आग्रह-पूर्वक आदेश कर रही है एवं हिन्दू-महासभा भी अस्पृश्योंको देव-मंदिरोंमें दर्शनके लिए प्रवेश देना आवश्यक और न्याय समझती है, और चूँकि भारतके सर्वमान्य नेताओंका अभिप्राय भी इसी अनुसार है, इसलिए उपर्युक्त बातोंका भले प्रकार विचारकर और भविष्यमें देशकी धार्मिक, सामाजिक आदि बातोंका विचारकर निश्चय किया जाता है कि श्री लक्ष्मीनारायण-देवस्थान, वर्धा, अस्पृश्य लोगोंके लिए खोल दिया जावे।

"इस ठहरावका अमल मंदिरके व्यवस्थापक श्री जमनालालजी जिस प्रकार उचित समझें उस प्रकार करें।"

तदनुसार एक छपी हुई विज्ञप्ति वर्धेमें बाँटी गयी कि १९ तारीखसे यानी प्रस्तावके दो दिनों बादसे ही अछूतोंके लिए मंदिरका द्वार खोल दिया

जायगा। कहा जाता है कि इस विज्ञप्तिके सिवाय और कोई संगठित उद्योग नहीं किया गया था। मगर तो भी कोई १,२०० आदमियोंने मंदिर आकर दर्शन किया और किसी किस्मका कोई विघ्न नहीं पड़ा। यह बात बहुत ही सार्थक है कि वर्धेके समान महत्वपूर्ण स्थानमें भी 'अछूतों' के लिए एक मंदिरका दरवाजा खोला जा सका और तो भी रूढ़ि-पंथियोंने जरा भी विरोध नहीं किया या कुछ लोगोंने सनातन धर्मके नामपर 'अछूतों'के एक पवित्र और उनके लिए अबतक बन्द हिन्दू-मंदिरका चौखट लाँघते समय कोई विघ्न उपस्थित नहीं किया। यह तो इसका स्पष्ट उदाहरण है कि अस्पृश्यता निवारणके आन्दोलनने कितनी उन्नति की है! इससे यह भी दिखलायी पड़ता है कि शान्त निश्चयसे किसी कामके पीछे लगे ही रहनेसे किसी सच्चे सुधारके आन्दोलनके पक्षमें किस तरह भला लोकमत तैयार किया जा सकता है। मैं जमनालालजी तथा उनके दूसरे साथी ट्रस्टियोंको इस साहसके लिए बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि इस उदाहरणका अनुकरण सारे भारतवर्षमें किया जायगा।

हिन्दी-नवजीवन
२६ जुलाई, १९२८



एक अन्त्यज क्या करे ?

एक अन्त्यज-सेवक लिखते हैं—

"आपके असहयोग आंदोलनसे, पूज्य स्वामी श्रद्धानंदजीके दलितोद्धारसे, भारत-केसरी लालाजीके अछूतोद्धारसे आर्य-समाजके सुसंगठित प्रचार-कार्यसे और हिन्दू-महासभाके शुद्धि संगठनसे आज अछूत कहे जानेवाले अन्त्यजोंमें जागृति पैदा हुई है। बहुतसे जागे हैं। अपने उद्धारका भान हुआ है। अपने पैरपर खड़े होने के लिये वे तैयार हुए हैं। उनमें स्वाभिमानकी भावना पैदा हुई है, नवजीवन आया है। लेकिन फिर भी देहातमें आज खुले-आम उनका अपमान होता है। उन्हें फिजूल दुःख पहुँचाया जाता है। उनका खादीके कपड़े पहनकर सफाईसे रहना तक लोगोंकी आँखोंमें खटकता है। ऐसी हालतमें वे क्या करें, कोई मार्ग बतलाइयेगा ?

"मैं एक गाँवमें गया था। मैं सोलहों आना खादी-भक्त और अन्त्यजोंका हितेच्छु ठहरा, इस कारण सीधा अन्त्यजोंके मुहल्लेमें ही पहुँचा। मुझे वहाँका वायुमंडल सुंदर जान पड़ा। वहाँके लोग अच्छे दीख पड़े। वहां मैंने एक युवकको शुद्ध खादीकी पोशाकमें देखा। इस कारण मैंने उसे बुलाया और कहा 'भाई, मुझे अपने घर ले चलो।' वह मुझे ले गया। लेकिन रास्तेमें उसने मुझसे कहा—'आपको मेरे घरपर चलते, वहां

रहते संकोच तो नहीं होगा न ?' मैंने साफ इन्कार किया । मैं उसके घर गया। जाते ही पानी मिला । मैंने पानी पिया । देखकर उस युवकके आश्चर्यका पार नहीं रहा। उसने मुझसे कई सवाल पूछे, मैंने उनके जवाब दिये।

'उस युवकने मुझसे कहा 'मैं हमेशा मन, वचन और कर्मसे शुद्ध रहता हूँ। ऋषि दयानन्दके सिद्धांतोंका पालन करता हूँ। उनके सिद्धांतको ही मैं अपना प्राण समझता हूँ । इसके सिवा खादी मेरी अत्यंत प्रिय वस्तु है । चर्खेको तो मैं अपनी माया (धन-दौलत) समझता हूँ। हर रोज सवेरे उठता हूँ। शौचादिसे निपटकर ऋषि दयानन्दकी बतलाई हुई दिनचर्यापर अमल करता हूँ। अपनी जातिके किसी भी आदमीके साथ रहना मुझे नापसंद है। क्योंकि बार-बार हर तरह समझाने पर भी उनका उतना ही असर होता है जितना पत्थरपर पानी डालनेका । इससे मैं ऊब गया हूँ और अब इच्छा नहीं होती कि उनके साथ रहूँ। मेरी अन्तरात्मा मुझसे कहती है कि इन लोगोंसे दूर रहनेमें ही मेरे जीवनकी सार्थकता है। यह सवाल मुझे बार-बार उलझनमें डालता है । आर्य-समाज एक महान संस्था है। वहाँ बिना किसी रुकावटके मेरा स्वागत किया जाता है, हम अपनाये जाते हैं। लेकिन हमारे गांवमें हमारी क्या हालत है ? आजकल तो गांधीजी भी नरम पड़ गये मालूम होते हैं ?'

मैं तनिक भी नरम नहीं हुआ हूँ। मैं अपने विचारमें जिस मार्गसे अस्पृश्यताको दूर करनेकी संभावना देखता हूँ उस मार्गसे उसे मिटानेमें कोई बात उठा नहीं रख रहा हूँ। मैं देख रहा हूँ कि देशमेंसे अस्पृश्यताकी भावना घोड़ेके वेगसे भागी जा रही है। मैं रात-दिन कामना तो यह करता हूँ कि वह वायु-वेगसे चली जाय। और मुझे विश्वास है कि किसी दिन जरूर वह वायु-वेगसे निकल भागेगी। लेकिन तबतकके लिये धीरजकी जरूरत है। उक्त पत्रमें जिन अन्त्यज भाईके उद्‌गार दिये गये हैं, वे समझमें आने जैसी हैं, लेकिन फिर भी उन्हें शांतिसे काम लेना चाहिये। इस संसारमें सुधारकको सदासे शुरुआतमें अकेला रहना पड़ता है। अगर सुधारकको इच्छा करते ही साथी मिल जायँ तो उसके सुधारकी ज्यादा कीमत नहीं रह जाय। अस्पृश्यता हमारे देशकी एक बहुत पुरानी बुराई है। और फिर इसे धर्मका चोंगा पहना दिया गया है। ऐसी बुराईका नाश करनेवालेको शीघ्र ही साथीके मिलनेकी आशा नहीं रखनी चाहिये। इस दिशामें आजतक जो काम हो सका है, जितने साथी इसके लिये मिल सके हैं, सो तो केवल प्रभुके कृपाका ही फल है। प्रस्तुत अन्त्यज युवकको इतनी बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि जो शुद्धि उन्होंने कष्ट द्वारा प्राप्त की है, वह लोगोंके लिये नहीं बल्कि उनके अपने लिये है। इस कारण इस शुद्धिमेंसे उन्हें शांति प्राप्त करनी चाहिये। जो यह मानता है कि लोग उसकी शुद्धिकी कद्र करें, वह सच्चा शुद्ध नहीं हुआ है। शुद्धि तो सदा स्वावलंबिनी होती है। दूसरे इन युवकको चाहिये कि वे निराश होकर अन्य अन्त्यज भाइयोंको छोड़ न दें। जो लोग सदियोंसे कुचले जाते रहे हैं उन्हें

तेजस्वी बनते, जागृत होते थोड़ा समय जरूर लगेगा। उनके प्रति तो धीरज और प्रेमकी भावना बढ़ानेकी जरूरत है। जो शिक्षा और सुविधायें प्रस्तुत अन्त्यज भाईको मिली है वही सारे अन्त्यज समाजके लिये भी संभव हैं। अतः हमें चाहिये कि हम उनकी उदासीनताको समझ लें। पत्थरके बारेमें इन भाईने एक कही है, दूसरी मैं उन्हें याद दिला देता हूँ—

'रसरी आवत जात तैं सिलपर होत निशान।'

इस बातमें पहली बातसे ज्यादा सत्य है। जब हिमालयका पानी पत्थरोंसे टकराता हुआ नीचे आता है तो वे पत्थर सूखे ही नहीं बने रहते बल्कि चूर-चूर हो जाते हैं। प्रेम-रूपी पानीसे तो पाषाण-हृदय भी पिघल जाता है।

हिन्दी-नवजीवन
२८ मार्च, १९२९



घर-फूँक तमाशा देख

वढवाणसे एक दूकानदार लिखते हैं—

"आजकल मैं गल्ले (अनाज) की दूकान कर रहा हूं। कई अंत्यज भाई मेरी दूकानसे अनाज खरीदते हैं। उन भाइयोंके संपर्कमें आनेसे मुझे अधिकाधिक अनुभव मिलता जाता है।

एक अन्त्यज भाई हैं। उनके दो बड़े भाई मर चुके हैं। उनके कई बाल बच्चे हैं। विधवा बहनें जंगलमें काम करती हैं और मजदूरीके पैसोंसे बच्चोंका भरण-पोषण करती हैं। इसी बीच बूढ़ा बाप भी चल बसा है। अब घरमें सिर्फ एक आदमी रह गया है। उसकी ताकत नहीं कि वह अनाज खरीद सके; लेकिन जातिवाले उससे कहते हैं कि पाँच-सौ रुपया उधार लेकर 'सुखड़ी' और भजियोंकी ज्यौनार करो। अन्त्यज भाइयोंमें जो ब्याज-खाऊ लोग हैं, वे इस तरहका धंधा करते रहते हैं। इससे बचनेकी कोई तरकीब?"

इसकी एक सरल तरकीब है तो, लेकिन जरा मुश्किल भी है। जो लोग ऊँची जातिके माने जाते हैं वे जो कुछ करते हैं अन्त्यज भी उन्हींकी नकल करते हैं। इसलिए अगर ऊँची जातिवाले 'कार्य-प्रयोजन' करना छोड़ दें तो अन्त्यज भाई सहज ही उन बुरी आदतोंको छोड़ देंगे, जिन्हें ऊँची जातिवालोंके कारण उन्होंने अपना लिया है। लेकिन इस शुभ घड़ीके आनेमें अभी दिन लगेंगे। इसलिये तुरंत ही फल देनेवाला मार्ग तो यह है कि सुधारके लाभ समझायें जायँ, उनसे सुधार

करवाये जायँ। कई तो केवल डरकर 'ओसर-मोसर' वगैरा करते हैं। अन्त्यजोंमें भी जातिसे बाहर करनेका डर रहता है, 'ऊँची' जातिवालोंसे भी ज्यादा। जो ऊँची जातिके सज्जन जातिसे बाहर हो जाते हैं उनके लिये तो सारा हिन्दू-जगत होता है। लेकिन जाति-च्युत अन्त्यजका रक्षक तो अकेला भगवान ही है, अन्यथा वह लालचमें पड़कर दूसरे धर्ममें चला जाता है। जिस दिन अन्त्यज भाई अपने आपको पहचानने लगेंगे उस दिन उनकी सुधार करनेकी शक्ति 'उच्च' जातिवालोंसे भी कहीं अधिक बढ़ जायगी। 'उच्च' जातिके मार्गमें तो कई दूसरे स्वार्थ और प्रलोभन रोड़े अटकाते हैं, लेकिन अन्त्यज जहाँ एक बार अपने आपको समझने लगा और निडर बना कि फिर उसके रास्तेमें एक भी रुकावट खड़ी नहीं होती। उन्हें इस तरह जागृत और निडर बनाना 'ऊँची' जातिवालोंका धर्म है, यही इनका प्रायश्चित है।

हिन्दी-नवजीवन
१८ अप्रैल, १९२९



मूक-सेवा

ठक्कर बापाका नीचे लिखा एक पत्र आन्ध्र-देशकी मुसाफिरीमें मिला है—

"ता० २ को साबरमती स्टेशनपर आपसे विदा लेकर रवाना हुआ सो ता० ३ को इस तरफ चल पड़ा। सबेरे अहमदाबादसे चलकर दोपहरको हारीज (कड़ी प्रांत) स्टेशन पहुँचा। वहाँसे मोटरबसमें बैठकर ४॥ बजे राधणपुर आया। दूसरे दिन ता० ४ को सबेरे ऊँटपर सवार होकर ता० ४–५ और ६ को तीनों दिन की दिन करीब २५ मीलका रास्ता तय करके ता० ६ को शामके वक्त यहाँ आया हूँ। कमर तो टूट गई मगर सही सलामत पहुँचा हूँ।

"इस बारेमें विदा होनेसे पहले आपसे बातचीत करनी थी लेकिन वक्त नहीं मिला; मोरबीमें युवक-परिषदके बनाने-बिगाड़नेमें समय न मिल सका। इस पत्र द्वारा उसे शुरू करता हूँ। भाई जयरामदास और मलकानीसे इस बारेमें बातचीत की थी, उनकी मदद भी ली है।

"अब यहाँ आनेका कारण सुनिये, यहाँ थरपाकरमें, यानी पारकरमें जो कोली, थरमें जो भील और थर और पारकर दोनोंमें जो मेघवाले आबाद हैं उनमें घूमकर उनके बारेमें जाती हकीकत इकट्ठी करके यह जान लेना है कि उनकी सेवा करनेका कौन-सा मार्ग है।

"बम्बई सरकारने एक कमेटी कायम की है। उसका उद्देश्य अन्त्यजों और मूल निवासियोंकी मदद करनेके उपायों एवं साधनोंकी सूचना करना है। मैं इस कमेटीका एक मेम्बर हूँ। इसी वजहसे मैंने यह मुसाफिरी शुरू की है।

"यहां दो दिन रहनेके बाद वीरावाव, छाछरो, सालेना तड़, खीसर वगैरा जगहोंमें होता हुआ गढ़डा स्टेशनसे मारवाड़-हैदराबाद लाइनपर पहुँच सकूँगा और वहांसे सीधा दाहोद जा पहुँचूँगा; क्योंकि वहाँ रामनवमीके दिन झालोद आश्रमकी ओरसे राममंदिर खोलना है। ता० ९ से १५ तक, लगातार सात दिन सबेरे और शाम, ऊँटकी मुसाफिरी करनी अभी बाकी है।

"जगह-जगह कोली, भील और मेघवालोंकी छोटी-छोटी सभायें करनी हैं। थरपाकर सिंधके सात जिलोंमें सबसे पिछड़ा हुआ जिला है। उसमें भी ये जातियाँ सबसे पिछड़ी हुई जातियाँ हैं। उनकी जानकारी हासिल करने, उनसे दोस्ती पैदा करने और दुनियांके सामने उनकी हालतको जाहिर करनेकी गरजसे इस धूपमें ऊँटकी मुसाफिरी करने की हिम्मत की है!

"आज यहांके कोलियोंकी और कल मेघवालोंकी सभामें जाऊँगा। मीरपुरखासके कांग्रेसी कार्यकर्त्ता श्री ढालूमल यहां मेरी मददके लिये आ पहुँचे हैं। बातचीत करने और परिस्थितियोंके देखनेसे यह अंदाज हो रहा है कि नगरपारकरमें मेघवाल और कोलियोंके बालकोंके लिये और उत्तरमें १५–२० मील दूर भीलोंके बच्चोंके लिये एक-एक आश्रम कायम करना पड़ेगा। तभी कुछ ठोस काम हो सकेगा। बालकोंको वर्ण परिचय कराने, चर्खा, पींजन और कर्घे वगैराका उपयोग सिखाने तथा उन्हें संस्कृत बनानेके लिये गुजरातसे अच्छे शिक्षक लाकर आश्रमोंकी व्यवस्थाका काम उन्हें सौंपा जायगा।

"यहाँकी भाषा गुजराती ही है। सिंधीका स्थान गौण है। यहांके कोली अस्पृश्यता, गरीबी और दुश्मनी दर्जेके लिहाजसे मेघवालोंकी बराबरीके हैं। कोलियोंसे छूकर रूढ़िका कायल हिन्दू नहाता नहीं, मगर पानी जरूर छींट लेता है। भील काश्तकार हैं, लेकिन काश्तकी जमीन उनके हाथोंसे निकाली जा रही है।

"बिलाशक, इस मुसाफिरीकी समाप्तिपर ही मेरी दरख्वास्तको विशेष मूर्तरूप दे सकूँगा। फिर आपके, वल्लभभाई, जयरामदास और मलकानीके साथ बैठकर चर्चा करनी पड़ेगी। तभी इसे अमलमें लाने या न लाने और इसके लिए धनकी व्यवस्था करनेकी बातपर विचार करेंगे। अभी तो सिर्फ इस ओर आपका ध्यान खींचनेकी इच्छासे ही यह पत्र लिखा है।'

मुझे इन ढेढ़ोंके पुरोहित और भीलोंके गुरुसे ईर्ष्या होती है। हम दोनों समान उम्रके हैं। मगर मेरे शरीरको हिफाजतकी जितनी जरूरत है, ठक्कर बापाके शरीरको उतनी जरूरत नहीं है। मैं आन्ध्र-देशकी यात्राका कष्ट सहन कर सकता हूँ। इस विचारसे मन-ही मन कुछ-कुछ फूल रहा था, अपनेपर दया दरसा रहा था, देशभक्त वेंकटापैया वगैरा साथियोंको बहुत ज्यादा दौड़ धूप कराने के लिए धमकाता था कि इतनेमें तो मेरे मदको चूर-चूर करनेके लिये यह पत्र आ ही पहुँचा। कहाँ तो ऊँट और सिंधका रेगिस्तान और कहाँ वह ऊबड़-खाबड़ लेकिन मोटरको रास्ता देनेवाला मार्ग—मोटर जिसमें मेरे सोनेकी सुविधा रहती है!

लेकिन मैं अपनी ईर्ष्या प्रकट करनेकी गरजसे यह पत्र नहीं छाप रहा हूँ। ठक्कर बापाके ऊँटकी अम्बारी (हौदा) देखकर मैं गरीब अपनी छोटी-सी मोटरका त्याग नहीं करूँगा। सिंधके रेगिस्तान मुझे आन्ध्रके हलके रास्तोंको नहीं छुड़ा सकते।

यह पत्र तो मैं यह बतानेके लिये छाप रहा हूँ कि मूक-सेवा किसे कहते हैं। सच्ची सेवा इसीका नाम है। भील वगैरा भाई-बहनोंके साथका पुराना रिश्ता हमें फिरसे ताजा करना हो तो ठक्कर बापाके पाससे गुरुमंत्र लेना चाहिये। उन्हें लूलों लंगड़ोंकी सोहबतमें ही मजा आता है, उनके बिना उन्हें चैन नहीं पड़ती। उनके पीछे भटकनेमें ही वह आराम समझते हैं, उसीमें देव-दर्शन और उसीमें पेट-पूजा भी।

ठक्कर बापा जुग-जुग जीयें, उनकी गद्दी सलामत रहे, उनका वंश बढ़े। सरकारी कमेटीकी बात तो मुझे इस पत्रने ही कही। इस कमेटीके मेम्बर बनना आपके लिये माफ है। इस कमेटीमें रहते हुए भी आप उसमें नहीं हो।

हिन्दी-नवजीवन
२ मई, १९२९



एक प्रतिवाद

पाठकों को याद होगा कि आंध्र-यात्राके सिलसिलेमें तनुकू स्त्री-सभाका उल्लेख करते हुए मैंने एक संवाददाताकी शिकायत छापी थी। उनका कहना था कि सभाके समाप्त होते ही बहनोंने घर जाकर इस गरजसे स्नान किया था कि वे सभामें मेरे साथ आई हुई अन्त्यज-बाला लक्ष्मीसे छू गई थीं। दो अन्य संवाददाताओंने अपने पत्रोंमें पूर्व संवाददाताके इस दोषारोपका घोर विरोध किया है। मैं उनमेंसे एकका पत्र सहर्ष नीचे उद्धृत करता हूँ—

"तनुकूकी स्त्री-सभाके बारेमें आपकी टिप्पणी पढ़कर हमें बड़ा आश्चर्य हुआ। आपकी टीका उचित हो सकती है, बशर्ते कि आपके संवाददाताकी खबर सत्य हो लेकिन मुझे कहते दुःख होता है कि आपके संवाददाताने भयंकर भूल की है।

"हो सकता है कि कुछ महिलाओंने श्रीमती प्रभावती देवीको अन्त्यज-बाला लक्ष्मी मान लिया हो। लेकिन जहांतक मुझे पता है, यह भी सच नहीं है। कुछ महिलाओंने उन्हें कन्या-कुमारी समझा था, जो आपके साथ आश्रम आनेको तैयार हुई थी। लेकिन यह सरासर झूठ है कि सभा समाप्त होते ही सब महिलायें, अपने बाल-बच्चोंके साथ, शुद्ध

होनेकी हेतुसे कृष्णा नदीमें नहाई थीं। मैं अपने कुटुंबकी महिलाओंके साथ सभा-स्थलपर मौजूद था। मैं ब्राह्मण हूँ फिर भी मेरे घरकी किसी औरतने ऐसा स्नान नहीं किया था। मैं और भी कई महिलाओंको जानता हूँ जो उस दिन सभामें गई थीं, उनमेंसे हर-एकने मुझसे कहा है कि उन्होंने कभी इस बातकी कल्पनातक नहीं की थी। मैंने कई कट्टर महिलाओंको आपके संवाददाताका पत्र पढ़कर सुनाया, समझाया मगर उन्होंने भी उसे एक अजीब चीज समझा। यहां एक बात ध्यान देने योग्य है: उस दिन महिलायें एक छोटेसे भवनमें घंटेभर पहलेसे प्रतीक्षा करती बैठी थी: गर्मी बेहद थी और वे सब पसीनेसे नहा चुकी थीं। मुझे पता है कि कुछ बहनें इस मैलको छुड़ानेकी इच्छासे नहाई थीं। संभव है, कुछको सांझकी रसोई बनानी रही हो, और इसलिये भी वे नहाई थीं। मगर यह कहना कि एक तथाकथित अछूतसे छू जानेके कारण उन्होंने स्नान किया था, एक कुत्सित दोषारोप करना है।"

दोनो संवाददाताओंने अपने-अपने नाम भेजे हैं। उनकी बातको न माननेका मेरे पास कोई कारण नहीं है। जो बहनें सभामें आई थीं उनकी आत्माको दु:खी करनेका मुझे रंज है। जिस बातका यह प्रतिवाद है उसके संवाददाताका नाम भी मेरे पास था। अतएव मैंने उनसे पूछा है कि किस आधारपर वह ऐसे गंभीर दोषारोप कर सके। मुझे यह देखकर हर्ष होता है कि बहनें भी अब अपने पर लगाये गये इस दोषारोपका प्रतिवाद करती हैं कि उनकी सभाओंमें अन्त्यजोंकी उपस्थिति उन्हें दूषित बनाती है।

हिन्दी-नवजीवन
२० जून, १९२९



मौर्य-साम्राज्य और अस्पृश्यता

एक पाठक नीचे लिखा जानने योग्य उदाहरण भेजते हैं—

"चन्द्रगुप्त-मौर्यके साम्राज्यमें १८ प्रधान रहते थे। उनमें पहले प्रधान थे, पुरोहित। जहां पुरोहितके अधिकारोंका उल्लेख किया गया है वहां आचार्य चाणक्यकी आज्ञा यों है— 'जो पुरोहितके आज्ञा देनेपर भी अस्पृश्यको वेद न पढ़ावे, अस्पृश्यको यज्ञ करा देनेसे इन्कार करे, वह पदच्युत किया जाय, अपनी जगहसे हटा दिया जाय।' चन्द्रगुप्तके राज्यमें अस्पृश्यता इस दर्जेको पहुँच गई, मगर उस समय भी यह नियम था, जो खासकर विचारणीय है।"

पाठकने ऊपरका उद्धरण "मौर्य-साम्राज्यका इतिहास" नामक पुस्तकमें-से लिया है। इस उद्धरणसे पता चलता है कि अस्पृश्यताके खिलाफ होनेवाला

आंदोलन कोई अर्वाचीन एवं नई बात नहीं है। पूर्वज भी उसके मुकाबलेमें खड़े हुए हैं। यह विष-वृक्ष जड़मूलसे फेंकने योग्य है।

हिन्दी-नवजीवन
२७ जून, १९२९

अस्पृश्य कौन है ?

अस्पृश्यता सहस्त्र मुँहवाला एक सर्प है, जिनमेंसे हर एकमें विषैले दाँत दीख पड़ते हैं। उनकी कोई व्याख्या ही नहीं हो सकती। उसे तो मनु या अन्य प्राचीन स्मृतिकारोंकी आज्ञाकी भी कोई पड़ी नहीं है। उसकी अपनी निजी और स्थानीय स्मृतियाँ हैं। मसलन, अल्मोड़ामें एक जातिकी जाति जिसका धंधा तथा कथित सनातनधर्मके अनुसार भी एकदम निर्दोष है, अछूत मानी जाति है। उस जातिके लोग शिल्पी या किसान कहे जाते हैं। बोरा नामक एक दूसरी जातिकी भी यही दुर्दशा है, यद्यपि वह न मुरदार मांस खाती है, न शराब पीती है, और न सफाई या स्वच्छताके नियमोंकी उपेक्षा ही करती है। परंपराने उन्हें अछूत बना दिया है। हिन्दू-धर्म, जो किसी बातपर विचार नहीं करता, ऐसी परंपराओंको बिना विचारे निभाता चला जाता है, फलस्वरूप लोग उसकी हँसी उड़ाते हैं, और बुरी-से-बुरी भद्द भी। सुधारक इस बुराईसे लोहा लेनेकी कोशिश कर रहे हैं। लेकिन मेरे विचारमें हिन्दू-धर्मको इस कलंकसे मुक्त करनेके लिये और भी अधिक जोरदार और उग्र उपायोंसे काम लिया जाना चाहिये। कट्टरताका हृदय दुखानेके खियारसे हम व्यर्थ ही डरते हैं। अगर अपने जमानेमें ही हम इस बुराईका अंत देखना चाहते हैं तो हमें चाहिये कि हम निडर बनें। अस्पृश्यताका यह भूत सहज ही उन लोगोंके सरपर चक्कर काटता रहता है, जो इसके लिये जवाबदेह हैं। अल्मोड़ामें चौका-भोजनके भक्तकी छूत-छातने गहरी जड़ जमा ली है, यहाँतक कि जातियों और उपजातियोंसे आगे बढ़कर हरएक व्यक्ति भी अपने आपमें एक अछूत बन गया है। चौकेकी बुराईका राज्य प्रेम विद्यालय जैसी राष्ट्रीय संस्थापर भी अपना असर डाले हुए है। मुझे बहुत आश्वासन मिला। जब पूछनेपर पता चला कि विद्यालयके ट्रस्टियोंमेंसे कोई भी चौकेकी प्रथामें विश्वास नहीं करता है, मगर इस डरसे कि कहीं बच्चोंके माता-पिता उन्हें विद्यालयमें भेजना बन्द न कर दें इस कुप्रथाकी उपेक्षा की जाती है।

नायक

जिस तरह दक्षिणमें एक फिरकेके लोग अपनी कन्याओंसे लज्जाजनक-

जीवन बितवाते हैं और उन्हें देवदासीका मोटा नाम देते हैं, उसी तरह अल्मोड़ामें नायक नामकी एक जाति है, जो बिना किसी पर्याय नामके अपनी कन्याओंसे पाप-मय जीवन बितवाती है। तथापि वे अपने कार्यको धर्मका रूप देकर उसका बचाव करती हैं और लड़कियोंके साथ-साथ धर्मको दलदलमें फँसाती हैं। परिवर्तनहीन और अपरिवर्तनीय जीवित नियमके स्थानपर अगर परमात्मा कोई सनकी व्यक्ति होता तो अवश्य ही महज गुस्सेमें आकर उसने उन लोगोंका खात्मा कर दिया होता जो धर्मके नामपर उसका और उसके नियमोंका निरादर करते हैं। 'सर्वेण्ट ऑफ इण्डिया सोसाइटी' (भारत-सेवक समिति) नायक माता-पिताओंसे मिलकर उन्हें इस बातके लिये राजी कर रही है कि वे अपनी कन्याओंको पतित बनानेके पापसे बाज आयें। मगर तरक्कीकी रफ्तार अभी धीमी है क्योंकि लोकमत अभी सोया हुआ है और मनुष्यकी वासनायें पापके दुगने पुरस्कार देती रहती है।

हिन्दी-नवजीवन
११ जुलाई, १९२९



काशीकी पण्डित-सभा

जब मैं काशीजीमें था मेरे पास काशी-पण्डित-सभाकी तरफसे तीन प्रश्न भेजे गये थे। उन प्रश्नोंके उत्तर देना मैंने अपना धर्म समझा था। परन्तु उस समय मुझे अवकाश नहीं था। बादमें वे प्रश्न मेरे दफ्तरमें पड़े रहे। भ्रमणमें मैं उन्हें साथ न ले सका। अब जब कि दफ्तर साफ कर रहा हूँ, उक्त प्रश्न मेरे सामने हैं और ये हैं—

१. श्रुतियों तथा श्रुति-सम्मत स्मृतियोंको अभ्रांत प्रमाण माननेवाला एक सनातनधर्मी धर्मशास्त्रज्ञ "देवयात्राविवाहेषु संकटे राजविप्लवे, उत्सवेषु च सर्वेषु स्पर्शास्पर्शो न दुष्यतः" इत्यादि अपवादोंके सिवा अछूतों (चाण्डालों) के स्पर्शका सर्वदा व सर्वथा किस तरह समर्थन कर सकता है और कह सकता है कि हिन्दूधर्ममें अछूत नहीं हैं?

२ "तस्माच्छास्त्रं प्रमाणन्ते कार्य्याकार्ये व्यवस्थितौ" इस गीता वाक्यको अविचल भक्तिके साथ माननेवाली सनातनधर्मी जनता ही भारतवर्षमें अधिक है, और उसीमें आपको काम करना है, अतएव जबतक आप अपने अछूतोद्धारवाले कार्य्यक्रमको शास्त्र सम्मत न सिद्ध करलें तबतक उसका प्रचार कैसे हो सकता है?

३. मुसलमान उलेमाओंके हृदयमें यह भाव कूट-कूट कर भरा है कि इस्लाम-धर्मके सिवा दूसरे धर्मको माननेवालोंकी हत्या करना सवाब है, वे काफिर हैं, उनके साथ

मेल तभी हो सकता है जब वे इस्लाम धर्म कबूल कर लें। जबतक छोटे-बड़े सभी मुसलमान इन्हीं उलेमाओंके अधीन है, तबतक हिन्दू धर्मकी रक्षा करते हुए हिन्दूलोग मुसलमानोंसे किस प्रकार मेल कर सकते हैं ?"

मेरे उत्तरमें पण्डित महाशय पाण्डित्यकी आशा न करें। मैंने धर्मको अनुभव द्वारा जिस रूपमें जाना है, शास्त्रको अनुभवसे मैं जिस तरह समझता हूँ उसीके आधारपर उत्तर देनेका मैं नम्र प्रयत्न करता हूँ।

केवल नाम देनेसे श्रुतिस्मृतियाँ धर्म वाक्य नहीं बन सकती हैं। जो कोई भी बात सत्यादि अटल सिद्धांतोंके विरुद्ध है, वह धर्म प्रमाण नहीं हो सकती। मनुस्मृति आदि जो ग्रंथ आज हमारे सामने रखे जाते हैं वे मूलतः जैसे थे वैसे आज प्रतीत नहीं होते, क्योंकि उनमें विरोधी वचन आते हैं। उनमें ऐसे भी वचन पाये जाते हैं, जो सनातन नीति, सिद्धांत और बुद्धिके विरोधी हैं। श्रुतिग्रंथोंके रहस्यको देखते हुए 'अस्पृश्यता' पाप ही प्रतीत होती है। मैंने अस्पृश्यताके विषयमें जो वाक्य कहा है, वह तो यों है, 'आज हम जिसे अस्पृश्यता मानते हैं, उसके लिये शास्त्रमें कोई प्रमाण नहीं है'। इस कथनमें और पण्डितोंने जिस वचनका मुझमें आरोप किया है, उसमें बहुत अन्तर है।

आजके अछूतकी व्याख्याके लिए प्रचलित स्मृतिग्रंथोंको प्रमाण माननेसे भी कोई आधार नहीं मिलेगा। पंडितोंने जो स्मृति-वचन उद्धृत किया है उसे प्रमाण माननेसे भी हमारा तीन चौथाई कार्य सधेगा। देवयात्रा, विवाह, संकट, राजविप्लव और उत्सव हमारे सामने आज भी मौजूद हैं। इनमें किसीको अछूत न माननेकी स्मृतिकी सम्मति होते हुए भी पण्डित लोग क्यों जनताके सामने अस्पृश्यताका समर्थन करते हैं ?

अब दूसरे प्रश्नका अधिक उत्तर देनेकी आवश्यकता नहीं है। मैंने बताया है कि मेरे कार्यक्रमके लिये पण्डितोंके ही वचन काफी हैं। परन्तु यहाँ इस बातपर थोड़ा विचार करें कि शास्त्र किसे कहा जाय। मैं ऊपर बता चुका हूं कि संस्कृत भाषामें छपे हुए हरएक संस्कृत ग्रंथको शास्त्र माननेसे पुण्य पाप सिद्ध हो सकेगा और पाप पुण्य बन जायगा। इसलिये गीताकी भाषाके अनुसार तो गीताके 'स्थितप्रज्ञ' का वचन ही शास्त्रका बुद्धिग्राह्य अर्थ हो सकता है। इसलिये यदि पण्डित लोग जनताको सीधे रास्तेपर ले जाना चाहें तो पाण्डित्यके साथ प्रज्ञाको भी स्थिर करें, और रागद्वेष आदिका त्याग करें। जबतक पण्डित लोग तपश्चर्या करके गीताके 'ब्रह्मभूत' न बनेंगे तबतक मेरे जैसे प्राकृत मनुष्यके पास अनुभवके सहारे सेवा करनेके सिवा और कोई चारा नहीं है।

अब रहा तीसरा प्रश्न। मेरा नम्र अभिप्राय है कि तीसरा प्रश्न करके

पण्डित महाशयोंने अपना अज्ञान प्रगट किया है। न तो इस्लामकी ही यह शिक्षा है कि अन्य धर्मवालोंकी हत्या कर्त्तव्य है, न भारतवर्षीय उलेमाओंके हृदयोंमें ही यह बात है। और न सब मुसलमान ही ऐसे उलेमाओंके अधीन हैं। हिन्दू धर्मकी रक्षा तो हिन्दुओंकी पवित्रतासे ही हो सकती है, किसी औरसे नहीं। आत्माकी रक्षा आत्मा ही कर सकती है। 'आप भला तो जग भला' इस लौकिक कथनके न्यायसे सबके साथ मिलकर रहना ही हमारा कर्त्तव्य है। मेरा अनुभव भी मुझे यही सिखाता है।

हिन्दी-नवजीवन
११ जुलाई, १९२९



अन्त्यजोंके लिये क्या किया है?

'नवजीवन' के एक पाठक पूछते हैं—

"दलितोद्धार और अन्त्यजोद्धारका कार्य किन-किन दिशाओंमें हो रहा है, कृपा कर अगले 'नवजीवन' में लिखेंगे तो उपकार मानूँगा।

"आपसे यह छिपा नहीं है कि अन्त्यजोद्धारकी समस्या कितनी जटिल हो रही है। छुआछूतके नामपर कहे जानेवाले अन्त्यजोंकी कई तरह बरबादी हुई है, उन्हें तरह-तरहके शारीरिक कष्ट सहने पड़ते हैं, उनपर कई अमानुषिक अत्याचार होते हैं, यही नहीं बल्कि राष्ट्रीय उन्नतिके तत्वको समझकर अगर कोई अन्त्यज सेवाकी दृष्टिसे स्वदेशी खादीके कपड़े पहनकर निकलता है, तो इसीमें वह कही जानेवाली उच्च जातियोंका अपराधी बनता है, और उसे मार भी खानी पड़ती है। राजनीतिक क्षेत्रमें जिस तरह आपने "हरि ॐ" करके कदम बढ़ाये हैं, उसी तरह इस क्षेत्रमें काम करनेके लिये भी अगर आप अपने कार्य-कर्त्ताओंको नियुक्त कर दें तो मेरी तुच्छ रायमें राजनीतिक क्षेत्रमें कामयाबी हासिल करनेके लिये यह उलझी हुई समस्या भी एक बड़ी उपयोगी चीज बन जायगी।

"फिलहाल आर्य-समाज और हिन्दू-महासभा इस दिशामें काम कर रही हैं। मगर मैं मानता हूँ कि इनके सिवा अगर आपके कार्यकर्त्ता भी इस काममें जुट जांय तो काम ज्यादा तेजीके साथ हो सकेगा। अगर आर्यसमाज, हिन्दू-महासभा और आपका मण्डल, जहां तक हो सके परस्पर मिलकर, आपसमें संगठित होकर, काम करेंगे तो इस क्षेत्रमें सफलता मिलना बहुत आसान है।"

अन्त्यजोंके लिये मैं क्या करता हूं इस सवालका जवाब देना मुश्किल है। इस बातका कोई हिसाब तो दे नहीं सकता। अतएव जवाब यही दिया जा

सकता है कि मैंने कुछ भी नहीं किया। किंतु यदि यह जवाब हलका-सा लगे तो यों कह सकते हैं कि अन्त्यज भाई-बहन जितना कहें उतना किया। बात तो यह है कि अन्त्यज-सेवाके नामपर, मैं अपनी शक्तिभर जो कुछ करता हूँ, वह स्वयं अपने लिये कर लेता हूँ। यह कहना कि कोई अन्त्यजोंका उद्धार करता है, दूषित है। अस्पृश्यताको मिटाकर उच्च कहे जानेवाले स्वयं अपना उद्धार करते हैं, हिन्दूधर्मकी रक्षा करते हैं। इस दृष्टिसे विचार करने पर तो प्रस्तुत प्रश्नका उत्तर देनेकी जरूरत ही नहीं रहती। जिस हद्तक यह सवाल सिर्फ मुझे लक्ष्य करके पूछा गया है, उसका जवाब यह है कि मैं स्वयं तो स्वतंत्र रूपसे कुछ करता नहीं हूँ, न कर ही सकता हूँ। भारत-भरमें असंख्य साथी इस काममें जुटे पड़े हैं। उनके कार्यमें मेरा जितना भाग हो सकता है, उसकी गणना किसीको करना हो तो भले ही कर ले।

यह भाई मानते है कि मै खादी-काम ज्यादातर करता हूँ, मगर यह उनकी भूल है। मैं स्वयं कोई खादी-काम करता हूँ, यह तो बता नहीं सकता, हाँ, प्रतिदिन नियमानुसार यज्ञके लिये जो कातता हूँ उतना-मात्र बता सकता हूँ। और तो जो कुछ होता है, सो साथियों द्वारा ही।

साथ ही खादी-काममें सैकड़ों या हजारों अन्त्यजोंकी जो सेवा हो जाती है, सो तो है ही। दूसरे, अन्त्यजोंकी सेवाका काम ऐसा नहीं है कि फी गज खादीकी कीमतके समान उसकी कीमतका कोई अन्दाजा हम लगा सकें। अगर कोई पूछे कि अन्त्यज शालायें कितनी खोली गईं, उनके लिये कुएं कितने खोदे गये, मंदिर कितने बांधे गये, तो इन सबके जवाबसे मुझे संतोष तो हो ही नहीं सकता। अगर कोई कह सके कि अस्पृश्यताका पारा इतना कम हुआ है, तो अवश्य कुछ पता चले। मगर ऐसा यंत्र हमारे पास है नहीं। अन्त्यजोंके लिये हजारों शालायें, उतने ही मंदिर और उतने ही कुओंके होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि अस्पृश्यता रूपी दीवारमें से एक ईंट भी हिली नहीं है। जब अस्पृश्यता-निवारणका काम शुरु हुआ तब अपनेको कट्टर वैष्णव माननेवाले मित्रोंने कहा था—"अगर आप अस्पृश्यता निवारणकी धुनको छोड़ दें तो शालायें वगैरा बनवानेके काममें जो आप कहें उतनी मदद दे सकते हैं। अस्पृश्यता मिटाकर आपको क्या करना है?" ऐसी मददसे मुझे जरा भी संतोष नहीं हो सकता था। मुझे अन्त्यजोंके लिये जुदी संस्थायें नहीं चाहिए थीं, मुझे तो वर्तमान सार्वजनिक संस्थाओंमें उनके लिये प्रवेशाधिकारकी जरूरत थी। जुदी संस्थायें हिन्दुओंके भूषणकी नहीं, बल्कि उनके दूषणकी सूचक हैं। आजकल अन्त्यजोंके लिये जुदी शालायें, मंदिर वगैरा बनवानेके झंझटमें मैं पड़ता भी हूँ, तो सिर्फ विवश होकर, आपद्धर्म समझकर और यह आशा रखकर कि आखिरकार इन संस्थाओं और दूसरी संस्थाओंके बीचका भेद मिट जायगा।

मैं स्वयं तो अस्पृश्यताको हवा होते देख रहा हूँ, मगर यह साबित करने के लिये मेरे पास कोई यंत्र नहीं है।

'प्रेम पंथ पावकनी ज्वाळा, भाळी पाछा भागे जोने;
मांही पड्या ते महा सुख माणे, देख नारा दाझे जोने।'

आर्य-समाज और हिन्दू-महासभा अपनी अन्त्यज सेवाके लिये धन्य-वादकी पात्र हैं। मैं जहां थोड़ा बहुत भी कर सकता हूँ, करता हूँ। लेकिन मैं कबूल करता हूँ कि कई बार काम करनेके तरीकेमें भेद होनेकी वजहसे मैं अपनी सेवायें समर्पित नहीं कर सकता। मुझे इस बातका लोभ नहीं है कि हर कार्यमें मेरा हाथ होना ही चाहिये, न हरएक कामके करनेकी मुझमें शक्ति ही है। मुझे अपनी शक्तिका भान है, उस मर्यादामें रहकर मुझसे जो कुछ हो सकता है, करके कृतार्थ होता हूँ।

हिन्दी-नवजीवन
१ अगस्त, १९२९



क्या हम स्वराज्यके योग्य हैं ?

विक्रमपुरसे एक भाई नीचे लिखा दुःखद पत्र भेजते हैं—

"मैं विक्रमपुरका रहनेवाला हूं। मेरा घर स्वर्गीय देशबन्धुके घरसे कुछ ही मील दूर है। मेरा जन्म नामशूद्र कुटुंबमें हुआ है। यह वही जाति है, जिसको लोग अन्त्यज या दलित कहते हैं।

"जिस आफिसमें मैं काम करता हूं, उसमें पचास मुहर्रिर काम करते हैं और प्रायः सबके सब उच्च जातिके बंगाली हैं। कुछको छोड़कर शेष सब मेरे ही आस-पासके ही जिलोंके निवासी हैं।

"मैं यहांके कार्यकर्त्ताओंके 'मेस' विभागमें रहता हूं। तथाकथित नीच जातिका होनेके कारण मेरे साथी मुझे कृमिकीटोंसे भी अधिक घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। मुझे भोजन इस ढंगसे परोसा जाता है कि कोई भी स्वाभिमानी पुरुष उसे सह नहीं सकता। 'मेस' का नौकरतक मेरे जूठे बर्तन मांजनेसे इन्कार करता है। यद्यपि सफाई और शिष्टताके लिहाजसे मैं 'मेस' के किसी भी सदस्यसे घटकर नहीं हूं, तो भी लोग मुझे जान-बूझकर नौकरसे भी नीचा समझते हैं। हिन्दू-समाजमें मानसिक पवित्रताका मानों कोई स्थान ही नहीं रह गया है।

"आप कृपाकर बतलायेंगे कि इस अभागे देशमें यह हालत कबतक बनी रहेगी ? जब कि लोग अपने देशवासियोंके साथ ही इतनी निर्दयताका बर्ताव

करते हैं, क्या आप समझते हैं कि हम स्वराज्यके योग्य हैं ? जब उच्च कहलानेवालोंके हाथोंमें सत्ता भी आ जायगी, तब क्या उच्चाधिकारके कारण नीच कहलानेवालोंके प्रति उनका व्यवहार और भयंकर नहीं बन जायगा ? जातिभेदके कारण जर्जर भारतवर्षमें आप इससे बेहतर किसी व्यवहारकी आशा रखते हैं क्या ?

"मेरा मानसिक क्लेश हद दर्जेतक बढ़ गया है। कृपाकर शीघ्र ही उत्तर दीजियेगा और बतलाइयेगा कि मैं क्या करूँ ?"

चूंकि लेखक अपना व्यक्तित्व नहीं प्रकट करना चाहते हैं, मैंने उनके पत्रके कुछ भाग निकाल डाले हैं। इसमें शक नहीं कि नामशूद्र भाईके साथ जो व्यवहार होता है, वैसा व्यवहार इसी श्रेणीके और भी कई भाइयोंको सहना पड़ता है। यह तो निर्विवाद है कि देशमें अस्पृश्यताकी बुराई घट रही है तथापि जो दलित-जातियाँ दिन-दिन अधिक जागृत हो रही हैं और कही जानेवाली उच्च-जातियों द्वारा अपनेपर किये जानेवाले अत्याचारोंकी स्वभावसे ही विरोधिनी बन रही हैं, वे अब और भी अधिक व्याकुल और एवं उग्र हो रही हैं।

उनका यह डर ऊपर-ऊपरसे तो ठीक मालूम होता है कि स्वराज्य प्राप्तिके बाद भी अगर यही हाल रहा तो सुधारकोंकी पुकार अरण्यरोदन ही बनी रहेगी और अबतक जो प्रगति हुई है वह भी अंध-कट्टरताके कारण धूलमें मिल जायगी। मगर मैं चाहता हूँ कि 'दलित-मित्र' यह समझ लें कि उनका यह डर निराधार है। ऐसा डर रखकर वे सुधारकोंके साथ ठीक-ठीक न्याय नहीं करते हैं। स्वतन्त्रता प्राप्तिके बाद संख्याका महत्त्व नहीं रहेगा। मुट्ठीभर लोगोंका दृढ़ संकल्प ही हमारी समस्याको हल कर सकेगा। जो आगे कदम बढ़ा रहे हैं, वे देख सकते हैं कि स्वातंत्र्य-संग्रामके अग्रभागमें सुधारक ही डटे हैं, प्रतिक्रियाशील लोग नहीं। क्योंकि प्रतिक्रियावाले तो धर्मका झूठा नाम लेकर विदेशी शासनकी सहायता और उसके हाथों अपनी रक्षा चाहते हैं। अतएव जब स्वराज्य प्राप्त हो जायगा, देशके शासनकी बागडोर सुधारकोंके ही हाथों आयगी।

दूसरे, 'दलित' जातियोंको यह विश्वास रखना चाहिये कि स्वराज्य-प्राप्त भारतके लिये जिस शासन-प्रणालीकी कल्पना की जा सकती है, उसमें उनके हकोंकी पूरी-पूरी और न्याय-रक्षाका भी समावेश तो होगा ही।

तीसरे, उन्हें चाहिये कि वे अपने आपको असहाय न समझें और न सुधारकोंकी सहायताकी अपेक्षा ही रक्खें। उनका पक्ष न्याय्य है और उन्हींको उसकी रक्षा भी करनी है। स्वराज्यका सच्चा अर्थ तो यह है कि स्वराज्य-प्राप्त देशका प्रत्येक सदस्य सारी दुनियाके मुकाबिले अपने स्वातन्त्र्यकी रक्षा करनेमें समर्थ हो। आंतरिक उन्नतिका ही दूसरा नाम स्वराज्य है। दलित भाइयोंकी यह व्याकुलता ही उनकी और भारतकी स्वाधीनताकी पूर्ण और अत्यंत आशाप्रद निशानी है।

निर्दोष असंतोष उन्नतिका सूचक है। मगर तबतकके लिये तो उन तमाम मुहर्रिरोंका और दूसरोंका जो दलित भाइयोंके संपर्कमें आते हैं यह परम कर्त्तव्य है कि वे उनके साथ अत्यंत आदर और शिष्टताका बर्ताव करें।

हिन्दी-नवजीवन
८ अगस्त, १९२९

श्रीः

दूसरा मंदिर खुला

श्री जमनालालजीके प्रयत्नसे वर्धाका मशहूर श्री लक्ष्मीनारायण मंदिर अछूत भाई-बहनोंके लिये खोला गया था। अब उन्हींके प्रयत्नसे बरार प्रांतके एलिचपुर शहरका दत्तात्रय-मंदिर भी खोला गया है। एलिचपुर किसी समय बरारकी राजधानी थी। आज भी उसमें ३८,००० की आबादी है। गत पहली जुलाईको सार्वजनिक सभाके बाद मंदिर अछूत भाइयोंके लिये खोल दिया गया था। अमरावतीके डाक्टर पटवर्धन सभापति थे। मंदिरको खुला करनेका काम जमनालालजीके हाथों हुआ। पद्रंह वर्ष हुए, ८३,००० रुपयोंकी लागतसे मंदिर बनाया गया था। मंदिरकी व्यवस्थाका भार चौबीस सज्जनोंकी एक समितिके जिम्मे है। इसमेंसे अठारहके बहुमतसे यह मंदिर अछूतोंके लिये खोल देनेका निश्चय हुआ। मंदिरके पाँच संरक्षक मंदिर खोल देनेके बारेमें एकमत थे। अब मंदिरके दरवाजेपर इस आशयका एक पटिया टँगा है—'आजसे यह मंदिर भंगी, महार, चमार वगैरा तमाम हिन्दुओंके दर्शन, भजन, पूजन, प्रार्थना, कथा-श्रवण इत्यादि धार्मिक कामोंके लिये खुला रहेगा।'

यह मंदिर स्वामी विमलानन्दके प्रयत्नसे बना था। स्वामीजी इस शुभ कार्यके अवसरपर उपस्थित थे। मंदिर खुला करते समय जमनालालजीने लगभग पचास अन्त्यज भाई-बहनोंके साथ मंदिरमें प्रवेश किया था। इस अवसरपर जमनालालजी और वर्धा सत्याग्रह-आश्रमके श्री विनोबा भावेने खास तौरपर भाषण किये थे।

इस कार्यके लिये मैं एलिचपुरके निवासियों, मंदिरके संरक्षकों और जमनालालजीको धन्यवाद देता हूँ। अछूत भाइयोंने उस दिन जिस आनंदोल्लासका अनुभव किया होगा उसकी कल्पना मैं कर सकता हूँ। जिस चीजके पानेके लिये वे रात-दिन तड़पते रहते हैं, जिससे हिन्दू-समाज उन्हें आजतक वंचित रखता आया है, उसके मिलनेपर उन्हें आनंद क्यों न होगा? लेकिन यह शुरुआत समुद्रमें बूँदके समान है। भारतमें हिन्दू-मंदिर लाखोंकी संख्यामें हैं। जबतक अछूत भाइयोंके

लिये देशके हरएक सार्वजनिक मंदिरका दरवाजा खुल नहीं जाता, हिन्दू-धर्मके उपासक दोषी बने रहेंगे और उनके लिए दुनियाके सामने सिर उठाकर चलना मुहाल होगा। अछूतोंका बहिष्कार करके हिन्दू-समाज स्वयं संसारमें बहिष्कृत किया गया है। हिन्दू-समाज इस बहिष्कारमेंसे बचनेका उपाय एलिचपुर और वर्धासे सीख ले।

हिन्दी-नवजीवन
२९ अगस्त, १९२९



देव मंदिरोंके ट्रस्टियोंसे

भारतीय-राष्ट्रीय-महासभाकी अस्पृश्यता-विरोधिनी-समितिके अवैतनिक-मंत्रीकी हैसियतसे श्री जमनालालजीने हिन्दू-मंदिरोंके ट्रस्टियोंसे नीचे लिखी जोरदार अपील की है ?

"शायद आपको यह पता होगा कि भारतीय-राष्ट्रीय-महासभाने इस साल खासकर अस्पृश्यता-निवारणके लिये एक पृथक समिति नियुक्त की है। स्पष्ट ही यह काम हिन्दुओंके द्वारा होना चाहिये, इस सम्बन्धमें महासभाके प्रस्तावकी मन्शा बिलकुल साफ है। इन दिनों जब कि भौतिक शास्त्रोंमें भीषण रूपसे तरक्की हो रही है, जब कि भारतको एक अविभाज्य इकाईके रूपमें दुनियाके सामने सर उठाकर खड़ा होना है और जब कि एक जातिकी बुराई उसके पड़ोसीके लिये दुःखद और सारे राष्ट्रके लिये अभिशापरूप बन गई है, यह उचित ही है और आप भी इसे मंजूर करेंगे कि महासभा जैसी राष्ट्रीय संस्थाको इसमें दिलचस्पी लेनी चाहिये और जितनी जल्दी हो सके उस जातिको ऐसी बुराईसे मुक्त करनेमें मदद करनी चाहिये।

"हिन्दुओंमें अस्पृश्यता कोई मामूली बुराई नहीं है। जो जाति दुनियाके इतिहासमें अपनी धार्मिक सहिष्णुता और उदार संस्कृतिके लिए ख्याति प्राप्त कर चुकी है, वही शताब्दियोंसे धर्मके नामपर एक सामाजिक रूढ़िको प्रचलित करके आज भी उसका प्रतिपादन करे और उसके द्वारा कुछ मनुष्योंको जन्मभरके लिये परस्पर मिलने-जुलने आदिके अधिकारोंसे वंचित रक्खे, उनके स्पर्श या दर्शन-मात्रसे अपने आपको अपवित्र समझे, निःसंदेह इससे बढ़कर दुःखकी कोई बात हो नहीं सकती। यह एक ऐसी पहेली है, जो प्रत्येक विचारशील भारतीयको परेशान करती रहती है।

"यह जाननेके लिये कि जो लोग नीची जातिमें पैदा हुए हैं, जिन्हें धर्म-शास्त्रोंमें 'कनिष्ठभ्राता' कहा गया है, उनके साथ किया जानेवाला वर्तमान व्यवहार भयंकर है, हमारे

हिन्दु-धर्मग्रंथों और हमारे शताब्दियों पुरानी संस्कृतिकी दृष्टिसे आपको विचार करना होगा। मैं यह आवश्यक नहीं समझता कि अपने विषयके समर्थनमें आपके सामने संस्कृत श्लोकोंके उद्धरण पेश करूँ। यही कहना काफी होगा कि अस्पृश्यताका निवारण अब एक निर्विवाद बात हो गई है। इस प्रथाका मूल और इसका औचित्य किसी समय चाहे जो भी रहा हो आज तो यह एक ऐसी निर्दय रूढ़ि-मात्र रह गई है, जो लोगोंके जागृत धार्मिक विचारों एवं आचारोंका स्थान जबर्दस्ती ग्रहण कर रही है।

"अगर हम प्राचीन परंपराका विचार करें तो हमें अस्पृश्यताके औचित्यके और भी कम प्रमाण मिलते हैं। जो हिन्दू परंपरा वैदिक एवं धार्मिक सिद्धांतोंपर स्थापित की गई है, जिसका पोषण कबीर, गौरांग, ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम, नरसिंह महेता तथा तमाम द्राविड़ साधु-संतोंकी मंडली द्वारा हुआ है, उसने सामाजिक हेल-मेलके मार्गमें आनेवाले रोड़ोंको न केवल हटाया ही था, बल्कि जोरोंसे उनका खंडन किया था और ऐसे हृदयशून्य भेदोंकी तीव्र उपेक्षा की थी।

"यह हमारे दुर्दैवकी खूबी ही है कि इतनी उज्ज्वल परंपराके रहते हुए भी आज हम अपने ही एक तिहाई भाइयोंके साथ इतना हृदय-शून्य बर्ताव करते हैं, उन्हें कुत्तों या पालतू जानवरोंसे भी बदतर समझते हैं। हमारे ही देशके जुलाहे, कारीगर, भंगी, डोम वगैरा जो देशके सच्चे कमानेवाले और राष्ट्रीय-धनके उपजानेवाले हैं, जो हमें साफ सुथरा रहनेमें, सुन्दर जीवन बितानेमें, सहायता पहुँचाते हैं उन्हीं अपने हितैषियों, नम्र और विनीत छोटे भाइयोंको हम उन तमाम सामाजिक और नागरिक हकों—जैसे जान-मालकी रक्षा, ज्ञान, सहयोग वगैरासे वंचित रखते हैं; जिनके बिना जीवन—जीवन ही नहीं रहता। अतः हमारे साथ भी हमारे कर्मोंके अनुरूप ही दुनियाभरमें अछूतों जैसा व्यवहार किया जाता हो तो आश्चर्य ही क्या ?

"मगर इस पापके दुष्परिणामोंका यहीं अंत नहीं होता। इस तरहके व्यवहारके कारण जो प्रकट अन्याय होता है, अछूतोंका जो अपमान किया जाता है, उसके कारण वे बाहरके गंदले—असत् वातावरणके शिकार बन जाते हैं और समाजसे पृथक हो जाते हैं। इससे केवल समाजका ही भयंकर नुकसान नहीं होता, बल्कि सारे राष्ट्रकी सामाजिक नींव ढीली पड़ जाती है। आप भलीभांति जानते हैं कि इधर कुछ सालोंसे इन अभागे 'अछूत भाइयों'ने किस तरह नये-नये विरोधी आंदोलन खड़े कर रक्खे हैं और उनके कारण पिछले वर्षोंमें देशकी मुख्य-मुख्य जातियोंमें कितनी कटुता एवं कितनी अनेकता पैदा हो गई है। आप यह भी जानते हैं कि किस तरह इन जातियोंके कुछ बहुत ही जिम्मेदार और आदरणीय नेताओंने इन अछूतोंको अपने-अपने धर्मोंमें मिला लेनेकी योजनायें बनाई और उनपर विचार किया है। इस तरह धर्म-परिवर्तन करानेमें उनका हेतु अधार्मिक ही नहीं, बल्कि कभी-कभी अत्यंत अनुचित भी रहा है।

"नये विचारोंके प्रचार, हिन्दुओंमेंसे ही कुछ सुधारक लोगोंके प्रयत्न और पिछले दशककी महान् जागृतिके फल-स्वरूप देशकी जागृत मनोदशा आदि कई कारणोंसे स्वयं

अछूत भाई भी धीरे-धीरे अपनी दुरवस्थाको महसूस करने और जन्मसिद्ध अधिकारके रूपमें अच्छे व्यवहारकी मांग पेश करने लगे हैं। कभी-कभी तो आप देखते होंगे कि वे अपनी मर्यादासे भी आगे बढ़ जाते हैं। आपने समाचार-पत्रोंमें पढ़ा होगा कि बरारके किसी स्थानके अछूतोंने कुछ समय पहले वहांके हिन्दू-समाजको नोटिस दिया था कि अगर वे उन्हें स्कूलों, कुओं और देवालयोंमें जानेके, एवं ऐसे ही दूसरे बराबरीके अधिकार नहीं देंगे, उनके साथ समानताका व्यवहार नहीं करेंगे तो वे सबके सब हिन्दू-धर्मका त्याग कर दूसरा धर्म ग्रहण कर लेंगे। इस धमकीके अनुसार कुछ व्यक्तियोंने सचमुच ही धर्म-परिवर्तन कर भी डाला, तब कहीं हिन्दू जागे, पछताये और बादमें तो उनकी मांगोंसे भी ज्यादा हक उन्हें सौंपे गये। मैं नम्रतापूर्वक कहना चाहता हूं कि ये ज्यादतियां, अगर स्वाभाविक हैं, तो लोगोंके आत्म-निर्णयकी सूचक हैं और एकाएक जागृत आत्माकी सहज द्योतक हैं। इनसे हम घबरायें नहीं। आज जब हम शताब्दियों पुरानी बेड़ियां काट रहे हैं और स्वातंत्र्य-गीतका प्रचार कर रहे हैं, थोड़े बहुत ऐसे अमर्याद कार्य तो होंगे ही।

"इन सब बातोंसे आपको—प्रत्येक भले हिन्दूको—दुःख होगा, आप ग्लानिका अनुभव करेंगे। लेकिन इसका उपाय हमारे ही हाथोंमें है, हम खुले दिल और फैलायी हुई बाहोंसे अपने उन अछूत भाइयोंको अपनावें और बिना किसी संकोचके इन्हें अपने समाजका अंग बना लें। सीधे-सादे न्यायकी दृष्टिसे भी यह तो आवश्यक है कि हम इन्हें अपने गांवके कुओंसे पानी भरने दें, उनके बच्चोंको अपने बच्चोंकी ही भांति गांवके मदरसेमें पढ़ने-लिखनेका मौका दें और अन्य हिन्दुओंकी भांति इन अछूत भाइयोंके लिये भी प्रभुके दरबारके—देवमंदिरोंके-दरवाजे खुले छोड़ दें। हमारा यह परम कर्त्तव्य है कि हम इन अभागे भाइयोंको अपनी छातीसे लगायें अपने अबतकके पापोंके पश्चातापके रूपमें बड़ी नम्रताके साथ इनसे भाई-चारा जोड़ें।

"यह जानकर कि आप हिन्दू-धर्मके संरक्षक हैं और उसके स्मारकोंके (देवमंदिरोंके) —ईंट पत्थरके स्मारकोंके नहीं बल्कि सच्चे मौलिक-तत्वोंके—ट्रस्टी हैं, मैं यह अपील लेकर आपके सामने साहसपूर्वक उपस्थित हुआ हूं। हिन्दुओंके लिये मंदिर ही शताब्दियोंसे उनके धार्मिक, सामाजिक भावोंके आश्रय स्थान रहे हैं। उनके लिये क्षण-मात्र भी यह सोचना कि कोई भी जीवित प्राणी प्रभुकी कृपाके अयोग्य है, एक लज्जास्पद बात है। हमारे महान साधु-संतोंकी बड़ी-बड़ी विरासतोंमें एक विरासत यह भी है कि हम किसी भी मानवको अपनेसे घटिया न समझें। यही क्यों, हमारे देशमें, ऐसे-ऐसे महान संत हो गये हैं जो स्वयं जन्मसे शूद्र या अछूत थे। अतः यह आपका एक भूला हुआ, मगर शीघ्र ही करने योग्य कर्त्तव्य है कि आप अपने अधीनस्थ मंदिरके द्वार अछूतोंके लिये खोल दें।

"बड़ी कृपा होगी अगर आप इस अपीलके संबंधमें अपने विचार या कार्यकी दिशासे मुझे सूचित करेंगे।"

हमें आशा रखनी चाहिये कि यह अपील अरण्यरोदन भर न होगी। वर्धाने हमें मार्ग बता दिया है। आशा है, हिन्दू जनता सार्वजनिक सभायें करके

और दूसरे उपायोंसे काम लेकर भी इस अपीलका समर्थन करेगी। सबसे प्रभावशाली तरीका तो यह हो सकता है कि जहाँ-जहाँ महत्वके देवमंदिर हैं, वहाँ-वहाँ स्थानीय सभाएं संगठित की जायँ और उनके द्वारा ट्रस्टियोंके पास डेपूटेशन भेजे जायँ। ट्रस्टी मंदिरोंके स्वामी नहीं बल्कि जनताके एजेण्ट हैं और यदि जनता किसी खास मंदिरमें 'अछूतों' को प्रवेश करने देना चाहती है, तो अपने व्यक्तिगत मतभेदके रहते हुए भी ट्रस्टियोंका यह कर्त्तव्य है कि वे जनताकी इच्छा पूरी करें।

हिन्दी-नवजीवन
१२ सितंबर, १९२९



अछूतोंके लिए मंदिर

नामधारी अछूतोंके लिए आगे बढ़कर दृढ़ताके साथ झगड़नेवाले श्री स्वामी आनंद लिखते हैं—

"इस सप्ताह बंबईके समाचार-पत्रोंमें कलकत्ता-म्युनिस्पल-गजटके लिए भेजे गये आपके लेखका कुछ हिस्सा छपा है, जिसमें अछूतोंके हिन्दू-मंदिरोंमें जानेके बारेमें ये विचार प्रकट किए गए है—'अछूत बालकोंके लिए नमूनेदार पाठशालायें खोलकर, मंदिरोंके ट्रस्टियोंको अछूतोंके लिए अपने मंदिर खोल देनेको राजी करके और जहां पर मुमकिन न हो वहां किसी अच्छे स्थानपर खासकर अछूतोंके लिए आकर्षक मंदिर बनाकर और आम-जनताको अछूतोंके साथ मंदिरोंका उपयोग करनेके लिए रजामंद करके हमारी म्युनिसिपैलिटियां इस दिशामें बहुत कुछ सहायता पहुँचा सकती हैं' वगैरा।

"इस समय इस प्रांतमें खासकर बंबई और पूनामें परिस्थिति जैसी नाजुक हो रही है, उसे देखते हुए मुझे डर है कि अछूतोंके लिए अलग मंदिर बनानेके आपके प्रस्तावके कारण, जो भी उसकी भाषा खूब संयत और विशेषता सूचक है, लोगोंमें गलतफहमी फैल सकती है। क्या आप कृपा करके इसपर प्रकाश-डालियेगा?"

सन् १९१५ में जब मैंने दक्षिण-अफ्रीकासे लौटकर इस आंदोलनकी नींव डाली ही थी, मैंने सोचा था कि अस्पृश्यता-निवारणके साथ अछूतोंके लिए अलग मंदिर या पाठशालायें खोलना सर्वथा असंगत हैं। लेकिन बादमें अनुभवसे पता चला कि शुष्क-तर्कके आधारपर यह आंदोलन सफल नहीं हो सकता। हम हिन्दुओंने अपने एक-तिहाई हिस्सेको इतना अधिक दबा रक्खा है कि समझदार हिन्दुओंके एक स्वरसे अस्पृश्यताको मिटा डालनेकी घोषणा कर चुकनेपर

भी दलित और अस्पृश्य-वर्गको हमारी सहायताकी कई तरहसे आवश्यकता होगी। सिद्धांत और जबानी तौरसे छूत-छातके मिटानेके निश्चय कर चुकनेपर भी अगर कोई खास कोशिश नहीं की जायगी तो अधिकांश अछूत इस संधिसे लाभ न उठा सकेंगे और जनता भी अज्ञानवश इस सुधारको सह न सकेगी, खासकर उस हालतमें जब कि अछूत भाई अपने स्वभावके अनुसार या तो पूर्ववत् अल्हड़ बने रहेंगे या बहुत दिनों बाद प्राप्त स्वतंत्रताका उपयोग करनेके लिए बहुत आगे बढ़ जायेंगे। इसलिये मैं तो यह मान बैठा हूँ कि दोनों काम एक साथ होने चाहिये, याने साधारण मंदिरों, आम मदरसों और कुओंका उपयोग करनेकी पूर्ण स्वतंत्रताके साथ ही साथ अछूतोंके लिए खास तौरपर नमूनेदार मंदिर और मदरसे बनाये जाने चाहिए। इन स्थानोंका उपयोग अछूत तो पहले करेंगे ही, लेकिन सर्व-साधारण भी इनसे लाभ उठा सकेंगे। इसी विचारधाराके अनुसार मैंने कलकत्ता म्युनिस्पल-गजटके अपने छोटेसे लेखमें यह बतानेकी कोशिश की है कि दलित जातियोंके लिये नमूनेदार मंदिर और पाठशालायें बनाकर तथा मौजूदा मंदिरोंको अपने देशके इन भाइयोंके लिए खुलवाकर हमारी म्युनिसिपैलिटियाँ अस्पृश्यता-निवारणके काममें खासी मदद कर सकती हैं।

अतः मेरे इस लेखकी आड़में कोई अछूतोंके मंदिर-प्रवेश आंदोलनको बेजा बतानेकी अथवा उसे रोकनेकी कोशिश न करें। बंबईके नेताओंने अपने वक्तव्य द्वारा सारे बंबई प्रांतको अछूतोंके लिए अपने मंदिर खोलनेकी जो सलाह दी है, उसकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी ही होगी। मुझे अभी-अभी यह पढ़-कर अत्यंत हर्ष हुआ कि बंबईके श्री ठाकुरदास नानाभाईने अपना रामचन्द्र-मंदिर अछूतोंके लिए खोल दिया है। मुझे आशा है, बंबईमें जिस कामकी शुरु-आत हो गई है, वह जोरोंसे आगे बढ़ता जायगा।

हिन्दी-नवजीवन
२८ नवंबर, १९२९



डाकिनकी आखिरी सांस

अन्त्यजोंके सेवक भाई रामनारायण मोम्बासासे लिखते हैं—

"जंजीबारका पुराना जोश अब नहीं रहा है, फिर भी ३२००) चन्देके मिले हैं। इससे सहज ही हमें संतोष नहीं हो सकता। लेकिन इस बार भाटिया सज्जनोंने अस्पृश्यता निवारणके कार्यमें खुशी-खुशी सहायता की और अच्छा चन्दा दिया। इससे

मालूम होता है कि अस्पृश्यता अब मौतकी घड़ियाँ गिन रही है। नौजवानोंकी हमें बहुत मदद रही। यहाँ आनेपर श्री नानाजीभाई विलायतसे युगांडा जाते हुए राहमें मिले। उन्होंने आपका पत्र बड़े प्रेमसे पढ़ा। छाया-आश्रमके मकानके लिये समितिने ५०००) की आवश्यकता प्रकट की थी। हमने यह बात उनसे कही। उन्होंने ५०००) देनेका वादा किया। श्री मूलचन्दभाईने आपको यह खबर दी होगी।

"यहाँ भी चन्दा उगाही शुरु हो चुकी है। व्यापारकी मंदीके कारण चन्दा कुछ ऐसा ही हो रहा है, फिर भी अछूत-बालकोंकी खुशनसीबीसे साधारणतया ठीक रकम मिल रही है। श्री नानाजीभाईने नैरोबी होते हुए दिसम्बरके अन्ततक युगांडा आ पहुँचनेको कहा है। वहाँ उनका अच्छा वसीला है।"

पूर्व-अफ्रीकाके भाई अन्त्यज-सेवाके लिये चन्दा दे रहे हैं। तदर्थ वे धन्यवादके पात्र हैं। जिनके पास है, लोग उन्हींसे मांग सकते हैं। अतएव चन्दा-वालोंके पूर्व-अफ्रिका वगैर जगहोंतक पहुंच जानेमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं। दानियोंकी खूबी, उनकी बड़ाई, तो इसमें है कि वे हरएकके गुण-दोषोंकी जाँच करके विवेकपूर्वक दान दें। धनिकोंका धर्म है कि वे केवल पेटके लिये भीख मांगने-वाले भीखमंगोंको और पाखण्डका पोषण करनेवाले पाखण्डियोंको एक कौड़ी भी दान न दें। उनके पास तो भले-बुरे सब जा पहुंचते हैं। ऐसोंकी परीक्षा करनेमें ही उनके विवेककी कसौटी है।

पूर्व-आफ्रिकामें प्राप्त मदद पर से भाई रामनारायणने अन्दाज लगाया है कि अस्पृश्यता डाकिन अब अपना आखिरी सांस गिन रही है। लेकिन सिर्फ अपनेको मिले हुए दान पर से ऐसा अनुमान करना अत्युक्ति कहा जायगा। किन्तु अब तो इस डाकिनकी अन्त घड़ीके कई लक्षण दीख पड़ने लगे हैं। जबलपुरमें श्री जमनालालजीके प्रयत्नसे एक साथ आठ सुप्रसिद्ध मन्दिरोंका अन्त्यज भाई-बहनोंके लिये खुल जाना और उसमें इज्जतदार लोगोंका शरीक होना तथा बंबईमें सेठ ठाकुरदास नानाभाईका अन्त्यजोंके लिये रामचन्द्र मन्दिर खोल देना वगैरा युग-परिवर्त्तनके सूचक हैं। अपनेको सनातनी माननेवाले कुछ लोग इन प्रयत्नोंका विरोध कर रहे हैं। लेकिन अगर सुधारकोंकी ओरसे अविनय न हो, वे धीरज न छोड़ें और अपना काम करते रहें, मर्यादाका भंग न करें—तो इन विरोधियोंका विरोध भी ठंडा होकर ही रहेगा।

अन्त्यज भाइयोंकी अधीरता सहज है। जहाँ अपने अधिकारोंके औचित्यके संबंधमें दो मत नहीं हैं, अपने साथ होनेवाले अन्यायका जो अनुभव करने लगे हैं, उनका अधीर होना स्वाभाविक है। फिर भी जब कि अन्त्यज सुधारकोंके लिये लगातार प्रयत्न करनेवाले अन्त्यजेतर हिन्दू जी-जानसे कोशिश कर रहे हैं, उस हालतमें अगर अन्त्यज भाई धीरज रक्खें, तो उन्हें अपना मन-चाहा फल

शीघ्र ही मिलनेकी संभावना है। अगर कोई अन्त्यजेतर हिन्दू उनका साथ न देते हों अथवा उनकी सहायताका कोई परिणाम न आ रहा हो तो अन्त्यजोंका कुछ करनेके लिये तड़पना समझमें आसकता है। लेकिन जब सुधारकोंकी ओरसे अथक प्रयत्न हो रहे हों और जबलपुर, बंबई वगैरा जैसे मीठे फल निकल रहे हों, तब धीरज की पूरी गुंजाइश है।

हिन्दी-नवजीवन
५ दिसम्बर, १९२९



हमारा भ्रम

तुलसीदासजीने कहा है—

रजत सीप महँ भास जिमि, यथा भानुकर वारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोई, भ्रम न सकै कोउ टारि॥

इसमें जो गूढ़ सत्य भरा है, उसका अनुभव मुझे तो नित्यप्रति होता रहता है। अच्छी या बुरी, जो बात हमारे ख्यालमें या हृदयमें धँस गई है, वह तबतक नहीं मिटती, जबतक तजुर्बा नहीं होता।

ठीक इसी तरह अस्पृश्यता-रूपी भ्रम हिन्दू जनताके हृदयमें घरकर गया है। बुद्धिके सहारे हम देखते हैं कि कोई अस्पृश्य नहीं है। जनताके पास कोई अस्पृश्यकी संज्ञा या परिभाषा नहीं है। यदि अस्पृश्य अपनी मानी गई काल्पनिक अस्पृश्यताको छिपावे, तो उसे पहचाननेवाले चन्द आदमियोंको छोड़कर कोई इस बातका कयास नहीं कर सकेगा कि वह अस्पृश्य है। इस तरह कोई 'अस्पृश्य' भाई हर जगह बगैर किसी रोक-टोकके मंदिरोंमें और दूसरे स्थलोंमें चले जाते हैं।

यदि अस्पृश्यता कोई धर्म होता तो एक प्रांतका अस्पृश्य हरएक प्रांतमें अस्पृश्य माना जाता। किंतु वस्तुतः आसामके अस्पृश्य सिंधके अस्पृश्य नहीं माने जाते। त्रावणकोरके अस्पृश्य कहीं अस्पृश्य नहीं हैं। वहाँकी अस्पृश्यता, दूरता इत्यादिकी तो और जगहोंमें गंध तक नहीं है।

हिन्दू जातिमें अस्पृश्यताका यह भ्रम इतना घोर – इतना भयानक – हो उठा है! श्री जमनालालजी इसे मिटानेका खूब प्रयत्न कर रहे हैं। उन्हें मंदिरोंके खुलवानेकी अपनी प्रवृत्तिमें काफी सफलता मिलती जाती है। जबलपुरमें एक साथ आठ मंदिरोंका खुलना, उसमें प्रतिष्ठित लोगोंका शामिल होना इत्यादि आशाजनक बातें हैं। इस भ्रमको मिटानेका राजमार्ग तो यह है कि जिनका भ्रम दूर हो चुका है वे अपने कार्योंसे भ्रममें डूबे हुओंको बता दें कि अस्पृश्यता नामका कोई धर्म है ही नहीं।

हिन्दी-नवजीवन
५ दिसंबर, १९२९